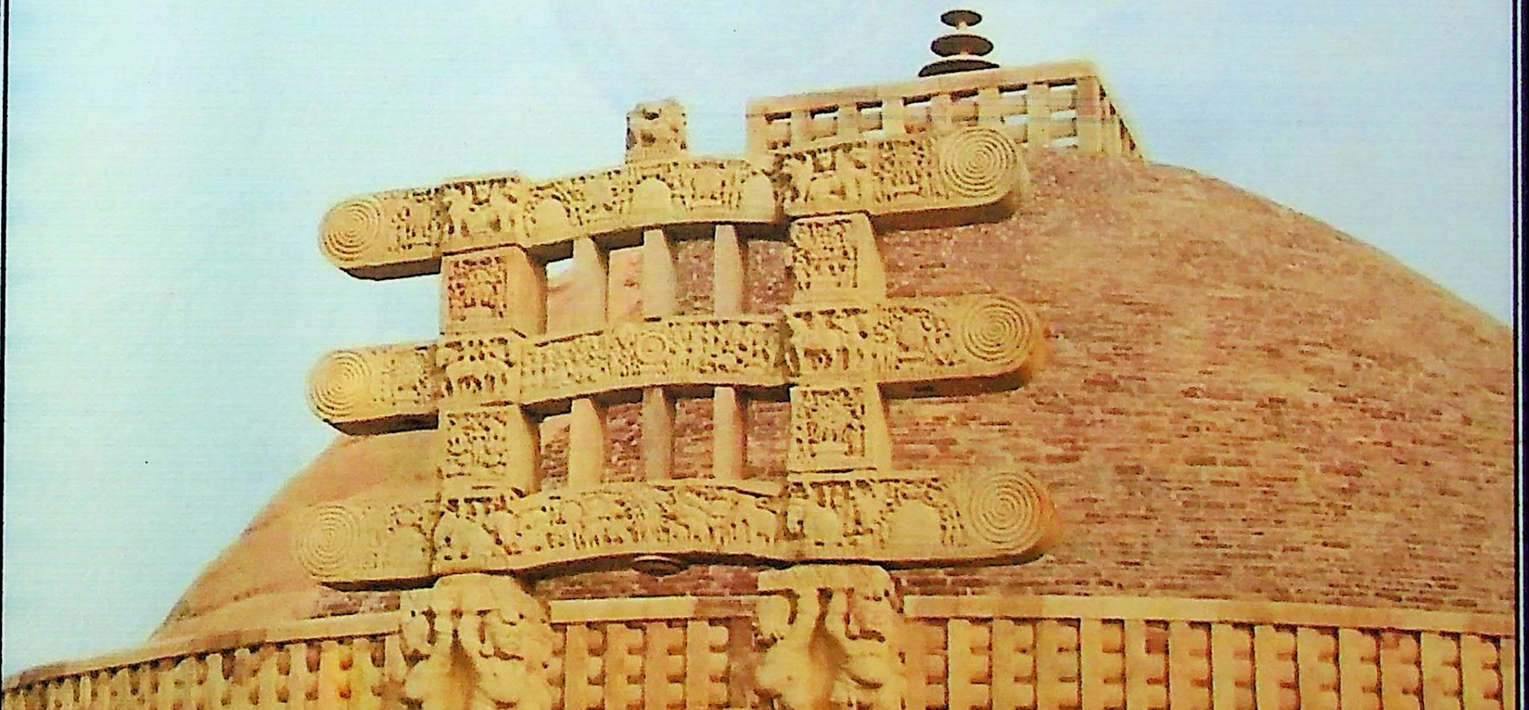
प्राचीन भारतीय स्तूप स्थापत्य

सांची, भरहुत एवं अमरावती के विशेष सन्दर्भ में



प्राचीन भारतीय स्तूप स्थापत्य

सांची, भरहुत एवं अमरावती
के विशेष सन्दर्भ में



स्तूप स्थापत्य का उदभव एवं विकास

प्राचीन भारतीय इतिहास,संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार

लघु शोध प्रबन्ध

सत्र 2015–16

निर्देशक
प्रो0 देवेन्द्र गुप्ता
प्रोफेसर

शोधार्थी
सौरभ कसाना
एम.ए.तृतीय सेमेस्टर

प्राच्य विद्या संकाय
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय,हरिद्वार
249404(उत्तराखण्ड)

।। प्रमाण–पत्र ।।

प्रमाणित किया जाता है कि **सौरभ कसाना** ने मेरे निर्देशन में **एम0 ए0 प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व** विषय में **तृतीय सेमेस्टर, वर्ष 2015–16** के **प्रश्न पत्र MHS- 307** की पूर्ति हेतु लघु शोध प्रबन्ध **'स्तूप स्थापत्य का उद्भव एवं विकास'** शीर्षक पर शोध कार्य पूर्ण किया है।

शोध निर्देशन

डॉ0 देवेन्द्र कुमार गुप्ता

प्रोफेसर

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आभार

"ॐ गुरु ब्रह्म गुरु विष्णुः गुरुदेव महेश्वरः

गुरु देवः परब्रह्म, तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

प्रस्तुत कार्य में जिन विद्वानों ने मुझको अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है उन सबका धन्यवाद करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम मैं अपने **निर्देशक प्रो0 देवेन्द्र कुमार गुप्ता** का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। जिनके द्वारा निर्देशित ग्रन्थों, पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं अथवा अन्य किसी भी प्रकार की साम्रगी, स्रोतों से मैंने अपने इस कार्य के लिए सामग्री ग्रहण की है।

मैं प्रायः स्मरणीय **माता श्रीमती धर्मवती देवी** एवं **पिता श्री महावीर सिंह** एवं घर के अन्य सदस्यों का भी मैं धन्यवाद करता हूँ। मैं अपने उत्तरदाताओं को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने गम्भीरता से मेरे उद्देश्य को समझकर सहयोग किया।

सौरभ कसाना

एम. ए., तृतीय सेमेस्टर

प्रस्तावना

ऐरावत समारूढ़ं नानामणि विभूषितम्

चतुः षष्टिकलाविद्या निपुणं वदनोज्ज्वलं,

भुजद्वये सुगर्भा च अपने मानधारकम्

बंदे विष्णुमहतेजो विश्वकर्मन ममास्तुते।

कला मानव संस्कृति की उपज है मानव के द्वारा कला की प्रतिष्ठा हुयी और उसके द्वारा वह आत्म चैतंन्य एवं आत्म गौरव प्राप्त करता ही है कला का उद्गम सौन्दर्य की मूलभूत प्रेरणा से हुआ है सौन्दर्य की अभिरूचि मनुष्य की अनुकरण प्रवृत्ति प्रमाणित होती है मानव की सर्वोपरि चेतना प्रकृति के अनुकरण में निहित है भारतीय कला में प्रत्यक्ष की अपेक्षा अप्रत्यक्ष तथा सत्य की अपेक्षा कल्पना को अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि कल्पना के द्वारा मनुष्य में नव चैतंन्य का जन्म होता है। प्रत्येक प्रकार की कलात्मक प्रतिक्रिया का ध्येय है– सौन्दर्य तथा आनन्द की अभिव्यक्ति। किसी देश कि कला एक व्यक्ति विशेष के उत्साह का फल नहीं है बल्कि कलाकारों की शताब्दियों की मनोरम कल्पना का परिणाम है तथा आन्तरिक मनोभावों की सच्ची परिचायिका है। कलाकृतियां समान समाज के सभी अंगों को प्रभावित करती है। कला के विभिन्न माध्यमों में स्थापत्य कला निसंदेह सर्वाधिक शक्तिशाली और बहुआयामी माध्यम रही है। इसमें जीवन के विविध धार्मिक और लोकिक पक्षों को विस्तृत आयाम देते हुये रूपायित किया गया है प्रारम्भिक स्थापत्य कला से लेकर अब तक की स्थापत्य कला पर पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो हम पायेंगे कि यह विस्तार मध्यकालीन स्थापत्य कला में अधिक विविधता के साथ दृष्टिगत होता है। प्राचीन भारतीय स्थापत्य कला में भारतीय स्थापत्य के इसी विराट और बहुआयामी स्वरूप को एक शोधार्थी की दृष्टि से देखने की चेष्ठा की गयी है। जो मेरे लिये दुष्कर किन्तु रोचक कार्य रहा है। वस्तुतः शताब्दियों तक जो कार्य अबाध गति से चला हो और जिसमें अनेक संस्कृतियां राजवंशों, स्थपतियों, शिल्पकारों, मंदिर निर्माताओं की भावनायें, अनुभव, जिज्ञासायें, धार्मिक व लोकिक तत्व आदि सभी कुछ शामिल रहा हो, उसे कुछ समय के अध्ययन को एक ही लघु–शोध में समाहित करने का प्रयास ना केवल दुष्कर वरन असंभव कार्य ही है। तथापि गुरुजनों का आर्शीवाद एवं शुभ चिंतकों की शुभकामनाओं से इस कार्य को सम्पूर्ण करने में मुझे अंशतः सफलता प्राप्त हो सकी है। लघु–शोध को एतिहासिक दृष्टिकोण देने के लिये मैंने प्रत्येक काल के स्थापत्य को शैली, विषय, और उनकी विशेषताओं के आधार पर इसमें विश्लेष्णात्मक परिप्रेक्ष्य देने का प्रयास किया है।

स्तूप का अर्थ एवं उद्गम

भारतीय धर्म की परिधि अतिशय विशाल रही है। धर्म के आदर्श विचार से समाज की वस्तुएं भी सम्बद्ध रहीं। भारतीय कला के विकास में धार्मिक प्रवृतियां अधिक बलवती सिद्ध हुई है। पौराणिक युग में मानवता के सर्वश्रेष्ठ गुणों को धर्म का आवश्यक अंग माना गया था। मनुष्य के जीवन–दर्शन की अंतिम सीढ़ी मोक्ष की प्राप्ति है (धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतषमं) अतएव, लक्ष्य की प्राप्ति (मोक्ष) के निमित्त मानव प्रयत्नशील रहता है। सभी धार्मिक कार्यों का लक्ष्य एक ही है, जिसका विवेचन भारत के दार्शनिकों ने किया है। कार्यों से आध्यात्मिक तथा सांसारिक वैभव को प्रकट करते हैं। मनुष्य का धार्मिक दृष्टिकोण उसे ऐसे कार्य करने की प्रेरणा देता है, जिससे वह लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सके। तीर्थयात्रा, पूजा–पाठ के अतिरिक्त दान को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मानव जीवन को प्रेरणा देने के निमित्त धार्मिक भवनों का निर्माण करता है, जो समाज में दृष्टांत उपस्थित कर सके। उनका विश्वास है कि ऐसे कार्यों से धार्मिक भावना की अभिवृद्धि होगी। यही कारण है कि भारतीय कला के नमूने धार्मिक विचार से ओत–प्रोत हैं। यदा–कदा मनुष्य सांसारिक वैभव के कारण भी ऐसा कार्य सम्पन्न करता है, जो मानसिक विचारधाराको प्रकट करता तथा उस व्यक्ति के वैभव का परिचायक हो जाता है। मानव ऐसे कार्यों द्वारा अपने आंतरिक सुख अथवा आत्मगौरव का अनुीाव कर जीवन–दर्शन को साक्षात्कार करने की कल्पना भी कर बैठता है।

धर्म के अभाव में प्रकृति–चित्रण भी कलात्मक कार्यों की विशेषता प्रकट करता है। प्राकृतिक सृष्टि ही शिल्प का सर्वप्रथम रूप है। प्राकृतिक सुन्दरता का आकर्षण तथा छटा की भव्यता का प्रदर्शन मनुष्य को सामाजिक कार्यों के लिए बाध्य करता है, जो जनजीवन के लिए लाभप्रद होते हैं तथा समाज–कल्याण के कारण बन जाते हैं। भारतीय कला का इतिहास यह बतलाता है कि आध्यात्मिक या सांसारिक वैभव को व्यक्त करने वाले उन कार्यों द्वारा मनुष्य के सद्गुणों तथा भावनाओं का अभिव्यंजन होता है। मानव ऐसा प्राणी है जिसने प्रकृति द्वारा नियोजित सभी वास्तुशिल्पों को अपना लिया है ओर वह आगे बढ़ने की भी होड़ करता है।

संस्कृति के आदिकाल से ही मानव ने शिल्पों की रचना की है, प्रारंभिक दशा में निर्मित वस्तुएं मिट गई हैं। पुरातत्व की खुदाई तथा अन्वेषण से प्राचीन वास्तुकला के अवशेष प्रकाश में आये हैं, जिनमें अधिकांश बौद्धमत से संबंधित हैं, किन्तु इनकी वैदिक परम्परा है। स्तूप के संबंध में भी यही दिख पड़ता है। यह कहना यथार्थ होगा कि वैदिक संस्कृति में इसका उद्गम प्रकटिक होता है। यही कालांतर में बौद्धमत का प्रधान स्मारक (समाधि) बन गया। धार्मिक प्रवृतियों के सशक्त प्रवाह के कारण स्तूप का विविध स्वरूप सामने आने लगा। इससे सबद्ध जनजीवन के कार्यों को कम महत्व नहीं दिया जा सकता।

भारतीय वास्तुकला के प्राचीन उदाहरणों में स्तूप प्राचीनतम माने गये हैं।

स्तूप–संस्कृत–स्तूपः अथवा प्राकृत थूप 'स्तूप' धातु से स्तूप का चैत्य बना है, जिसका अर्थ है एकत्रित करना, ढेर लगाना आदि।

अतएव मिट्टी के ऊँचे टीले के लिए स्तूप का प्रयोग होने लगा। अमरकोशः (3/5/19) में 'राशिकृत मृतिकादि' उसी कथन को पुष्ट करता है। साधारणतया स्तूप का संबन्ध बौद्धमत से प्रकट होता है, इसीलिए बौद्ध साहित्य दीघनिकाय (2/142) : अंगुत्तर (1/177) तथा मझिमनिकाय (2/244) में थूप या थूपिका किसी ऊँचे टीले या स्मारक के लिए प्रयुक्त मिलता है। तक्षशिला के एक अभिलेख में स्तूप स्थापना का विवरण है–

मरिखेन सम्यकेन थूवो प्रतिस्तवितो (का. इ. इ. भा. 2 सं. 2)

विद्वान स्तूप शब्द को योरोपीय शब्द टुम्ब (Tomb) से विकसित मानते हैं। इसमें विभेद यही है कि कब्र में शव जमीन में गाड़ दिया जाता है किन्तु स्तूप एक पुण्य स्थान है, जिसमें भस्म प्रतिष्ठापित किया जाता है। अंग्रेजी शब्द से स्तूप का विकास स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। कब्र के अन्दर कब्र हो सकती है। मिट्टी के टीले से बौद्ध–स्तूप की भावना सर्वथा भिन्न है। स्तूप के स्थान में पवित्रतां की भावना तथा अशुद्ध से रक्षा करने की इच्छा निहित है। भस्मपात के निचले भाग को धातु (शरीर = राख) गर्भ कहते हैं। इस शब्द से (धातुगर्भ) सिंहाला भाषा का डागवा शब्द

निकला। इसी गर्भ के ऊपर निर्मित भवन को परिपाटी लंका में भी पहुंच गई, जिस कारण शब्दों का निर्माण हुआ।

स्तूप के लिए 'चैत्य' शब्द का भी प्रयोग साहित्य में मिलता है। चैत्य शब्द 'चि' चयने धातु से निकला है, क्योंकि इसमें प्रस्तर या ईंट चिन कर (चुन कर) भवन निर्माण किया जाता है। (चीयते पाषार्णदिना इति चैत्यम्)। साथ ही यज्ञ के अंत में घीस्मादि पवित्र पदार्थों को बटोरने की क्रिया चयन कहलाती है। अतएव 'चैत्य' से उस प्रदेश का संकेत होता है जहाँ चयन–क्रिया संपन्न की जाती है। चैत्य शब्द 'चित्' तथा 'चिता' से भी संबद्ध है। चिता की राख को एक पात्र में रख, स्मारक बनाया जाता है, जिसे स्तूप कहते हैं। रामायण में श्मशान की चैत्य से तुलना की गई है। श्मशान चैत्य प्रतिमः (5/22/29) जहाँ श्मशान भूमि पर दिवंगत महापुरुषों या नृपतियों की स्मृति में चैत्य नाम से स्मारक तैयार किये जाते थे। इसलिए स्तूप एवं चैत्य का तुलनात्मक विवेचन तथा उल्लेख यत्रतत्र मिलता है। अवशेष से संबंधित भवन प्रत्यक्ष रूप से स्तूप कहलाया। उस भावना का स्वरूप चैत्य भी माना जा सकता है, किन्तु चैत्य में अवशेष की कल्पना और स्तूप में वह प्रत्यक्ष दिख पड़ता है। इसी कारण अमरावती के लेखों में स्तूप को चेतिय या महाचेतिय कहा गया है–

भगवतो महाचेतिय पदमले अपनो।

धम्मथान दिव खम्भो पतिथावितो।।

(महाचेतिय यानी स्तूप के मूलभाग में दीप–स्तम्भ की स्थापना की गई है।)

महाचेतिय चेति कियानां निकास परि नहे अपरधारे धमचकम् देधम्म थापित (धर्मचक्र की स्थापना भगवान के चैत्य समीप दान के फलस्वरूप की गई है।) सारांश यह है कि

अवशेष से चैत्य का सीधा संबंध है। अतएव स्तूप को चैत्य का पर्यायवाची शब्द भी माना जा सकता है। दोनों में केवल अंतर यह था कि 'चैत्य' पर्वत गुफाओं में खोदा जाता, जिसमें स्तूप का आकार वर्तमान रहता था। उसमें अवशेष रखने का प्रश्न

नहीं उठता। वह बौद्धमत का प्रतीक था, अतएव चैत्य शब्द का प्रयोग बौद्धों ने किया है। किन्तु स्तूप के भीतरी भाग में पात्र में अवशेष स्थापित कर भवन निर्मित किया जाता। इसकी स्थापना पर्वतों से पृथक् समतल भूमि में की गई थी और ईंट–प्रस्तर जोड़ कर स्तूप तैयार किये जाते। साधारण गुहा में स्तूपाकार की स्थिति के कारण ही उसको चैत्य नाम से पुकारा जाता था।

स्तूप की वैदिक परम्परा

बौद्धकाल से पूर्व युग में स्तूप अथवा चैत्य का वर्णन मिलता है। उसकी ऐतिहासिक परम्परा वैदिक युग तक चली जाती है। ऋग्वेद में अग्निदग्ध (अग्नि से जलाना) तथा अनग्निदध (10,15,14) शव को गाड़ने का विवरण प्रस्तुत करता है। अन्यत्र अग्निदग्धाः (ऋ. 10/18/8) स्मारक के लिए प्रयुक्त किया गया है, यहाँ अग्नि द्वारा जलाए जाने का भाव नहीं है। शव को पूर्ण रीति से वस्त्र सहित जमीन में गाड़ा जाता है। संभवतः भूमिगृह (पृथ्वी में घर) शब्द (ऋ. 7/8/9/1, अथर्व 5/3/14) शव को पृथ्वी में रखने का द्योतक है। मृत शरीर की उपलब्धि के लिए भूमिगृह में सभी वस्तुएं रखी जाती थीं। उसके हाथ में धनुष रखने का भी उल्लेख है। (वैदिक इंडेक्स भा. 1, पृ0 8)। वैदिक काल में मनुष्य के शव को गाड़ कर उसकी समाधि पर तूदाकार इमारत भी बनाया करते थे। यजुर्वेद में (इमं जीवेभ्यः परिधि दधामि मैषांनु गादपुरो अर्थमेतम्, मंत्र 35/15) में इस तरह की चर्चा आई है कि समाधि को परिधि द्वारा घेर लिया जाता, ताकि उस घेरे से शव की पवित्र भूमि को संसार के अपवित्र वातावरण से पृथक् रखा जा सके। कालांतर में परिधि को वेदिका नाम से पुकारने लगे। वाजसनेयी संहिता (18/1/3) में शव के गाड़ने का मंत्र उल्लिखित है। शतपथ ब्राह्मण (13/8/3/11) में वर्णन आता है कि चारो वर्णों के लिए विभिन्न आकार का शव टीला (कब्र) बनाना चाहिए। तैतरीय ब्राह्मण (3/1/1/7) में भी भूमिगृह का विवरण मिलता है। अतएव, वैदिक परम्परा में शव को गाड़ने तथा जलाने की क्रिया काम में लाई जाती रही। सूत्रकाल में जलाने के कार्य का विशेष रूप से उल्लेख है। आश्वलायन गृहसूत्र (4/5) में अस्थिकुंभ (urn) में शव की जली अस्थि या राख को रखकर पृथ्वी में गाड़ देने तथा ऊँचा टीला निर्माण करने का विवरण आया है। तात्पर्य यह है कि शव को जला कर अवशेष को पात्र में रखकर गाड़ने की प्रथा प्रचलित थी। क्रमशः अस्थिकुम्भ पर स्तूप का आकार तैयार करने की परिपाटी भी ज्ञात होती है। भारत की इस वैदिक परम्परा का अनुकरण विदेशों में भी होता रहा। बेबिलान के निपुर स्थान में एक विशाल ईसा पूर्व 3000 वर्ष के बतलाए जाते हैं। यूनान में जलाने की प्रथा थी, जिसका वर्णन आदि कवि होमर ने अपने काव्यों में किया है। वह कहता है कि दूरस्थ देशों में मारे गये

योद्धाओं का शव घर में लाना संभव न था, अतएव उनहें जला कर भस्म घरों में लाया जाय। इससे प्रकट होता है कि यूनान में शव को जलाने की प्रथा बाद में चालू हुई। यूरोप में ईसाई मत के प्रचार से दाह–संस्कार–प्रथा का अंत हो गया। दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में भारत से सदा संपर्क बना रहा। इस कारण वहां जलाने की प्रथा भी प्रचलित रही। जलाने से पहले कुछ दिनों तक शवों को मसाले में सुरक्षित रखते है। थाईलैंड में राजाओं के शव छह मास तक सुरक्षित रखते थे। और बाद में दाह होता था। गरीब लोग भी एक या दो दिन ऐसा करते थे। बर्मा में फुंगी (बौद्ध भिक्षु) के शव को एक सप्ताह मधु में सुरक्षित कर दाह किया जाता है। भस्म घड़े में रख कर गाड़ी जाती है और उस पर समाधि बनती है।

प्राचीन भारत में यजुर्वेद वर्णित शव टीला की परिपाटी चल पड़ी। रामायण (5/22/29) के वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महापुरूषों या नृपतियों की स्मृति में चैत्य (स्तूप) बनते थे। दीघनिकाय में तथागत का थूप, प्रत्येक बुद्ध तथा चक्रवर्ती नरेशों के स्तूपां का विवरण पाया जाता है। जातकों में थूप का प्रयोग स्मारकों के लिए किया गया है। इस प्रथा के अनुसार भारत में चैत्यों तथा स्तूपों का निर्माण बौद्ध युग में हुआ। इसके बाहुल्य के कारण मध्ययुगीन टीकाकार चैत्य का अर्थ बौद्धायतन ही करने लगे। सायण ने (16 वीं सदी) शमशान की परिधि पर व्याख्या करते हुए प्रस्तर की वेदिका का वर्णन किया है। मध्ययुग में वैदिक टीले की कल्पना संभव न थी, जिसका स्वरूप स्तूप ने ले लिया। स्तूप का इतिहास भी यही बतलाता है कि बौद्ध युग से पूर्व स्मारक–स्तूप निर्मित होते रहे।

डॉ0 काणे का मत है कि मृत शरीर का दाह–संस्कार चार चरणों मे पूर्ण किया जाता था–

1. शव को जलाना,
2. राख का संग्रह,
3. भस्मकलश में रखना और
4. स्मारक बनाना।

इस प्रकार स्तूप (स्मारक) बनाने का कार्य उस वैदिक सिद्धांत का बौद्धकालीन स्वरूप था।

बौद्ध युग से पूर्व स्मारक–स्तूप

भारत में वैदिक स्तूपों की परम्परा थी। यद्यपि उनके भग्नावशेष कम संख्या में उपलबध हुए हैं, तो भी उस परिपाटी के क्रम को नगण्य नहीं माना जा सकता। वैदिक साहित्य में स्तूप के वर्णन के अतिरिक्त हिरण्य स्तूप का विवरण पाया जाता है। अग्नि–ज्वाला की दीप्ति का वह महान पुंज है, जिससे विश्व की उत्पति हुई। उसका प्रतीक सूर्य है। उसका सम्बन्ध सदा महापुरूषों से ही रहता है। लोरिया नंदनगढ का स्तूप भी उसका एक उदाहरण है। यह स्मारक स्तूप समझा जाता है जिसे वैदिक यज्ञ की यादगार में निर्मित किया गया था। यह चौरासी फीट ऊँचा तथा काफी विस्तृत क्षेत्र में फैला है। खुदाई से मातृदेवी की आकृति सोने के पत्थर पर खुदी मिली है। नीलकंठ शास्त्री ने यह विचार व्यक्त किया है कि प्राचीन युग में चैत्य (बनचेतिय = पवित्र वृक्ष) के बाद स्तूप की पूजा धार्मिक जगत में आरंभ हुई। महाभारत (आदि पर्व 150/33) में देववृक्ष में चैत्य का उल्लेख किया गया है क्योंकि देवता पवित्र वृक्षों पर निवास करते थे। वैशाली में भी स्तूप बने थे, जिनका संबंध महान् व्यक्तियों से था। संघ के लोग उनका सम्मान करते थे।

महापरिनिव्वान सूत्त में वर्णन आता है कि बुद्ध ने आनन्द को बतलाया था कि चक्रवर्ती राजाओं की समाधि पर स्तूप बनाये जाते हैं। उसी प्रकार का स्तूप उनकी (बुद्ध की) समाधि पर निर्मित होना चाहिए, जो चौराहों पर स्थित हो–

चातु महापथे रज्जो चक्कवतिस्स थूपं करोति।

इससे स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक युग की प्रथा को बौद्ध लोगों ने अपनाया। बुद्ध के अवशेष पर अनेक स्तूप बनाए, गए जो उनकी मान्यता एवं लोकप्रियता को प्रकट करता है। अभिलेखों में इसे शरीर या धातुगर्भ कहा गया है। अवशेष पर हजारों स्तूप निर्मित हुए जो पूजा का विषय बन गया।

धातुगर्भ और स्तूप

भारतीय अभिलेख इस दिशा में अमूल्य सहायता करते हैं। उनके वर्णन से विदित होता है कि अमुक राजा ने बुद्ध के अवशेष (शरीर) पर स्मारक तैयार किया। इस प्रसंग में यह तर्क करना कठिन है कि उन नरेशों ने अवशेष कहां से प्राप्त किये। यहां विश्वास से ही काम लिया जा सकता है। उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में पीपरावा नामक स्थान पर एक स्तूप स्थित है, जो ईसा पर्वू चौथी सदी का हैं उसी खुदाई से धातु पात्र प्रकाश में आया है, जिस पर प्राकृत भाषा में निम्न लेख खुदा है–

इदं शरीरं निधानं बुद्धस्य भगवतः शाक्यानाम्।

पश्चिमोत्तर प्रदेश के समीप विजौर रियासत के शिनकोट स्थान से अवशेष संदूक के ऊपरी तथा भीतरी भाग पर लेख अंकित है जो यूनानी राजा मिलिंद के समय का है। संदूक के ढक्कन के भीतरी भाग पर निम्न लेख हैं–

भगवतु सकि मुणिस सम संबुधस शरीर।

इस लेख में बुद्ध के अवशेष को प्राणसहित कहा गया है। इसका तात्पर्य यह था कि स्तूप (शरीर रहित) की पूजा करने पर आश्चर्यजनक फल मिलता है। लोगों को विश्वास था कि अवशेष की पूजा से चमत्कार प्रकट होता है। ईसा पूर्व पहली सदी में स्वात नदी की घाटी में स्थित एक ग्राम से अवशेष–पात्र मिला है, जिसके निचले भाग पर लेख खुदा है–

इमे शरीर शक मुणिस भगवतो बहुजण हितिए।

वहां के एक यूनानी शासक ने भगवान का अवशेष जन कल्याण के लिए स्थापित किया था। मथुरा के राजा रजुबल (पहली सदी) के सिंह–स्तंभ पर इसी प्रकार का लेख खुदा है। वहां स्तूप में अवशेष स्थापित करने की चर्चा है–

श्रे निसिमें शरिरप्रत्रिठवितो भक्रवत्रो शक मुनिस बुधस।

तक्षशिला के शासक पटिक के ताम्रपत्र लेख में अवशेष स्थापना की चर्चा है–

पतिको अप्रतिठवति भगवत शक मुनिस शरीरं प्रतिथवेति।

कलवान ताम्रपत्र में भी निम्न प्रकार का वर्णन आता है –

दृढ़ शिलए शरीर प्रइस्तवेति गह थूवमि।

पेशावर के समीप कुर्रम से ताम्र पात्र मिलता है, जिसके ऊपरी भाग पर अवशेष–स्थापना की बात उल्लिखित है–

यूवंमि भगवतस शक्य मुनिस शरिर प्रदिठवेदि।

स्तूप में भगवान बुद्ध के अवशेष को स्थापित किया।

अफगानिस्तान से एक स्तूप के भग्नावशेष के कांस्यपात्र मिला है, जिसके निचले भाग पर लेख खुदा है। वग्रमरेग नामक बिहार के समीप सतूप में भगवान बुद्ध का अवशेष स्थापित किया गया–

वग्रमारेग्र विहरम्नि थूस्तिमि भगवद शक्य मुणे शरीर परिठवेति।

स्टेन कोनाक ने अनेक लेखों का उद्धरण दिया है, जिनमें धातु (शरि़र = अवशेष) की स्थापना का वर्णन है–

शिरे भगवतो धातु प्रिविते बिहारं स्वामिश्र प्रतिथवितो टुवो (स्तूप) नवबिहारेम्मि
अचरपन सर्वास्थि वादिन परिग्रहं थूवम्भि (स्तूप) भगवतो सक मुसिस शरीर।

(का. इ. इ. भा. 2, पृ. 115, 128)

इस प्रकार अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बुद्ध के अवशेष को स्तूप में प्रतिस्थापित करने की परिपाटी सर्वत्र थी। स्तूप की स्थापना धर्म का कार्य था। उसकी पूजा से पुण्यलाभ होता, ऐसा जनसाधारण में विश्वास था।

स्तूप का प्रयोजन, आकार तथा दार्शनिक विश्लेषण

वैदिक काल से समाज में पितृमेध का प्रचार था। श्मशान से राख या अस्थिकरण को एकत्रित कर भस्मपात्र में रखते थे। उसी के ऊपर एक स्मारक तैयार किया जाता था, जो साहित्य में स्तूप के नाम से उल्लिखित मिलता है। उसका तात्पर्य यह है कि महापुरुषों के स्मारक–निर्माण की परीपाटी अत्यंत प्राचीन है। बौद्ध साहित्य के अध्ययन से भी विदित होता है कि बुद्धको इस प्रथा का ज्ञान था। इसी कारण आनन्द से उन्होंने महापुरूषों के शरीर–अवशेष पर स्तूप बनाने की चर्चा की थी, जिसका उल्लेख महापरिनिव्वान सूत में किया गया है। शव के अवशेष पर स्तूप–निर्माण की चर्चा महावंश में भी की गई है। भारतीय कला में स्तूप का जितना प्रदर्शन है, सर्वत्र उसकी पूजा का क्रम दिखलाया गया हैं पूजा की परम्परा संभवतः अशोक के शासन से प्रारम्भ हुई। इसका कारण यह था कि भंगवान बुद्ध के चार प्रधान प्रतीक थे, जिनसे उनके जीवन की घटनाओं को व्यक्त किया जाता था।

1. जन्म का प्रतीक हाथी
2. ज्ञान का प्रतीक बोधिवृक्ष
3. धर्मचक्र का प्रतीक चक्र
4. परिनिर्वाण का प्रतीक स्तूप

स्तूप का परिनिर्वाण से संबंध अत्यंत स्वाभाविक था। दाह–संस्कार के पश्चात् शव की राख को भस्मपात्र में रख कर स्तूप बनाए जाते थे। आरम्भ में बौद्धमत की प्रथम शाखा हीनयान में प्रतीक का समादर ही सर्वश्रेष्ठ पूजा समझा गया, जिसका प्रदर्शन भारत की प्राचीन कला में दिख पड़ता है। अशोक के शासन में बौद्धमत राजकीय धर्म था, अतएव भगवान् बुद्ध के प्रतीकों को अशोक ने अपनाया। अशोक से पूर्व निर्मित स्तूपों की क्या दशा थी, यह वास्त्वतिक रूप से कहना संभव नहीं है,किन्तु कलात्मक उदाहरणों से यह कहना सही होगा कि बुद्ध के अवशेष पर स्तूप बने थे। अशोक ने उन निर्मित स्तूपों से राख का कुछ अंश निकल कर नए स्तूपों का निर्माण किया। ह्वेनसांग ने ऐसा विवरण दिया हैं महावंश में अशोक द्वारा निर्मित चौरासी हजार स्तूपों का उल्लेख पाया जाता है। तात्पर्य यह है कि अशोक

ने स्तूप–पूजा का प्रचार किया और साम्राज्य के विभिन्न स्थानों पर स्तूप–स्थापना की बातें उस चरितार्थ करती हैं। चारो प्रतीकों में स्तूप का निर्माण सरल कार्य था, संभवतः इस को ध्यान में रख कर अशोक ने स्तूप बनवाए। चौरासी हजार स्तूपों की पूजा से धर्म का प्रसार होगा, यह भी भावना कार्य करती होगी। धर्म–प्रचार के विभिनन उपकरणों में स्तूप–निर्माण का विशेष महत्व था। स्तूप–पूजा का प्रचार तथा प्रसार उत्तरोत्तर होता गया। यही कारण था कि उत्तर अशोक युग में संपूर्ण भारत के कलात्मक उदाहरणों में स्तूप–पूजा की प्रधानता है। भरहुत, बोधगया और अमरावती की वेदिकाओं पर उत्कीर्ण प्रदर्शनों में स्तूप–पूजा दृष्टिगोचर होती है। सांची के तोरणों पर पशु–पक्षी तथा मानव एवं देवतागण स्तूप की पूजा करते दिख पड़ते हैं। सार्वभौम रूप में स्तूप की पूजा अपनी विशेषता रखती है। ऐसा कोई जीव नहीं, जिसकी निष्ठा तथा श्रद्धा स्तूप पर आधारित न हो। गुहा में स्तूप की सरल खुदाई से वह स्थान (जिसे चैत्य कहा जाने लगा) पूजा–गृह हो गया। भाजा, पितलखोरा तथा नासिक (महाराष्ट्र) में ऐसे स्तूप गुहाओं में स्थित हैं। समीपस्थ विहार में निवास करने वाले भिक्षुगण चैत्य में स्तूप की पूजा करते थे। उपासकगण भी एक द्वार से चैत्य में प्रवेश कर तथा स्तूप की प्रदक्षिणा कर दूसरे द्वार से बाहर चले जाते थे। स्तूप के स्थान ने ही कालांतर में गर्भगृह का रूप धारण कर लिया, जिस स्थान पर प्रतिमा की प्रतिष्ठा की जाती थी। जैसा कि कहा गया है कि अशोक ने स्तूपों से अवशेष का अंश लेकर ही चौरासी हजार स्तूप बनवाये थे। इस घटना की पूर्व पीठिका में भगवान् बुद्ध के अवशेष के विभाजन की चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है। सांची– तोरण के दक्षिणी तथा पश्चिमी तोरण द्वारा की बड़ेरियों पर दृश्य खुदे हैं, जिसमें आठ हाथियों के सिरे पर भस्मपात्र रखा है तथा पीछे महावत बैठा है। इस प्रदर्शन का इतिहास बौद्ध–साहित्य में निहित है। भगवान् बुद्ध को परिनिर्माण मल्लों की राजधानी कुशीनगर में हुआ। शव के दाह–संस्कार के अंतर मल्लों ने बुद्ध की धातु पर अधिकार कर लिया। अन्य राजाओं ने भी उस धातु का अंश लेना चाहा। इस प्रकार पारस्परिक युद्ध की आशंका उपस्थित हो गई। उन व्यक्तियों के नाम निम्न प्रकार हैं–

1. अजातशत्रु– रागृह

2. शाक्य– कपिलवस्तु
3. बुली– अल्पकप्प
4. कोलिय – रामग्राम
5. मल्ल– पावा
6. लिच्छवि – वैशाली
7. ब्राह्मण– बेठद्वीप
8. मल्ल– कुशीनगर

मल्ल लोगों ने तथागत के परिनिर्वाण की भूमि कुशीनगर में ही स्तूप–निर्माण को सर्वश्रेष्ठ बतलाया और अन्य व्यक्तियों की मांग को ठुकरा दिया। युद्ध के भय के कारण द्रोण नामक ब्राह्मण ने धातु को आठ भागों में विभक्त करने का प्रस्ताव रखा। अपना– अपना भाग लेकर आठों घर लौट आये तथा धातु के ऊपर स्तूप बनाया। इस प्रकार आठ धातुगर्भ स्तूप अस्तित्व में आये। यही कारण था कि तोरणों की बंडेरियों पर युद्ध का प्रदर्शन है। पश्चात् आठ हाथियों के सिर पर धातु–पात्र उस कथानक की पुष्टि करता है कि भगवान का अवशेष आठ हिस्सों में विभक्त कर दिया गया।

उस युद्ध का विवरण महापरिनिव्वान सुत्त में कहीं नहीं पाया जाता, परन्तु सांची के दक्षिण तोरण–द्वार पर वस्तुतः खुदा दिख पड़ता है। पुरातत्व के अनुसंधान–प्रसंग में वैशाली के स्तूप का पता लगा है जिसे अशोक ने खोल कर धातु का अंश निकाल लिया था। उसका पुनः निर्माण भी हुआ था। अवशेष के अंश भी प्रकाश में आये हैं। इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि अशोक से पूर्व स्तूप निर्मित हो चुके थे। अधिक संख्या में स्तूप का निर्मण पूजा–निमित्त हुआ होगा, यह निर्विवाद है। ईसा पूर्व चौथी सदी में निर्मित पीपरावा स्तूप प्रकाश में आया, यद्यपि ईसापूर्व द्वितीय शती में सांची तोरण बने थे। किन्तु दक्षिण तोरण द्वार पर प्रदर्शित युद्ध दृश्य उस प्राचीन वार्ता को पुष्ट करता है, जिसके फलस्वरूप आठ स्तूप निर्मित किये गये थे। यदि अशोक को यह विषय ज्ञात न होगा, तो धातु के अंश को निकालना असंभव था। इस विवरण का सारांश यह है कि स्तूप का प्रधान प्रयोजन पूजा प्रकार था, कला में जिसका

प्रदर्शन है तथा साहित्य में उल्लेख। स्तूप का निम्न प्रकार से वर्गीकरण करते हैं, जिनका पृथक पृथक प्रयोजन समझते थे–

1. शारीरिक – जिस स्तूप को बुद्ध के अवशेष पर बनाया गया था।
2. उद्देशिका – उद्देशिका यानी किसी विशेष प्रयोजन को लेकर। सांची स्थित सारिपुत्र का स्तूप इसका उदाहरण है।
3. पारिभोगिक – तथागत के दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं पर निर्मित स्तूप।
4. व्रतानुष्ठित – ऐसा स्तूप जो मन्नत का चढ़ावा हो। उसमें किसी प्रकार के धातु या वस्तु के रखने का प्रयोजन निहित नहीं है। किसी की मन्नत मान लेने पर या इच्छा की पूर्ति होने पर उपासक बड़े स्तूप के चारों मिट्टी के छोटे स्तूप बनाया करता था। तक्षशिला, सारनाथ या नालंदा के प्रधान स्तूप के चारों तरफ मन्नत वाले स्तूप दिख पड़ते हैं।

स्तूप का आकार

स्तूप अर्थ टीला के रूप में प्रयुक्त है, यानी ऊँची टीला, जो मिट्टी से बनाया जाय। वैदिक युग में पित् मेध से इसका गहरा संबंध था। इस कारण अर्द्धगोलाकार टीले को स्तूप की संज्ञा दी गई है। ऊँचे चबूतरे पर स्तूप का आकार अर्द्धचंद्राकर दिखलायी पड़ता है। बौद्ध युग में वैदिक परम्परा को निदित समझ करके स्तूप को ईंट–प्रस्तर के सहारे तैयार करने लगे। उस अर्द्धगोलकार स्तूप के सिरे पर चौकोर घेरा तैयार दिख पड़ता है, जिसे हरमिका का नाम देते हैं। उसी में धातुगर्भ स्थित किया जाता है। उसी हरमिका के केन्द्र में छत्रयष्टि स्थिर की जाती है और यष्टि के सिरे पर तीन छत्र (एक के बाद दूसरा एवं तीसरा) निर्मित रहते हैं।

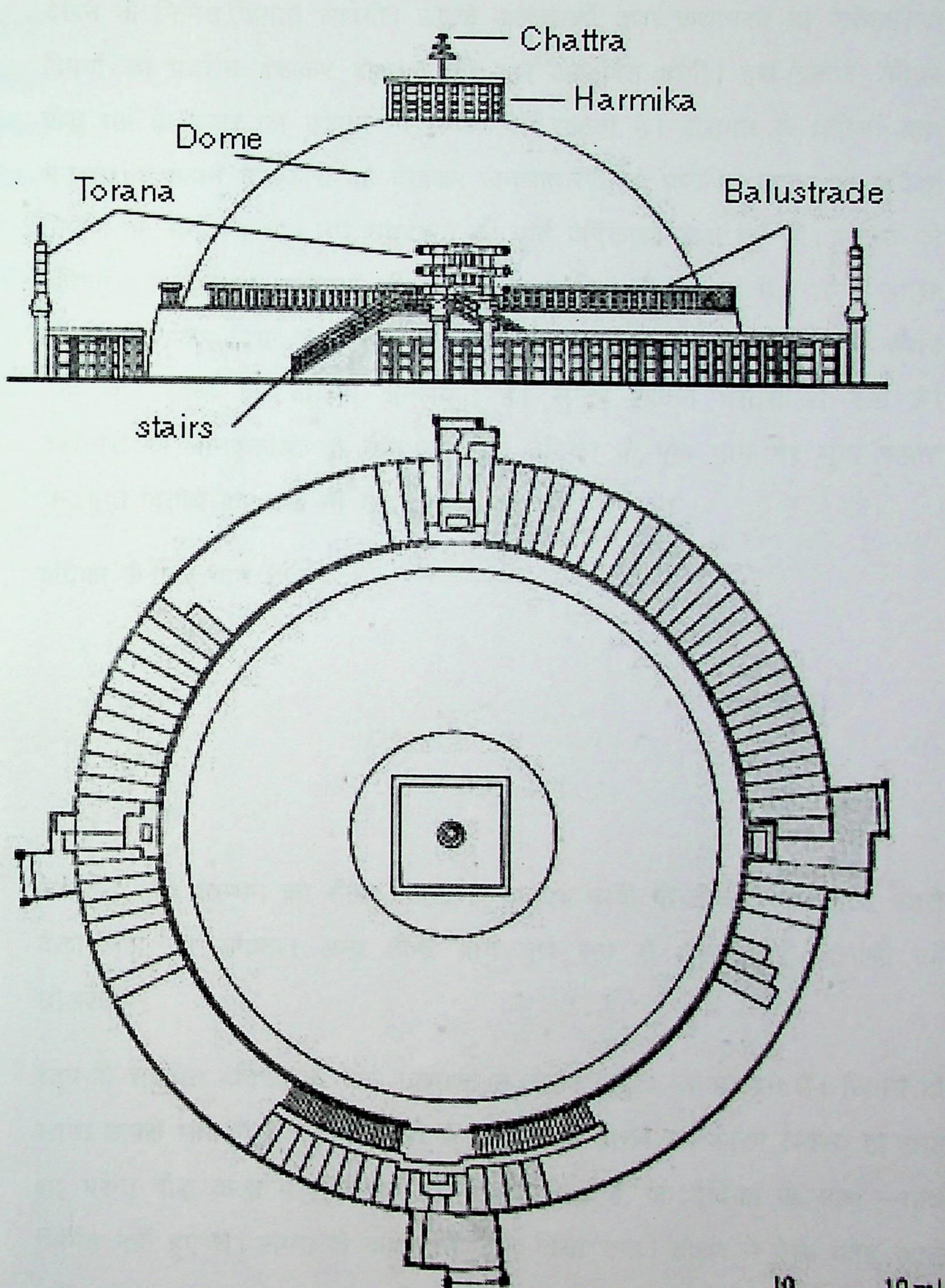
चबूतरे के ऊपरी भाग में स्तूप के चारों तरफ प्रदक्षिणा के लिए मार्ग सुरक्षित रहता है तथा किनारे पर वेदिका को स्थान दिया गया है। भिक्षुगण उस मार्ग से स्तूप की पूजा कर प्रदक्षिणा करते थे। उसे मेधी या मेध कहते हैं। ग्रामीण जनता अन्न को भूसा से पृथक् करते समय बैलों को एक स्तंभ के चारों तरफ घुमाती है। वही कार्य मेधी से लिया जाता है। स्तूप का आकार सर्वत्र एक सा नहीं मिलता । वैशाली का स्तूप छोटे आकार का है, जिसमें मेधी तथा हरमिका के लिए स्थान नहीं है। पीपरावा स्तूप भी उसी से मिलता–जुलता है। ये स्तूप प्रारम्भिक दशा को व्यक्त करते हैं, जिस समय कला विकसित न थी। हीनयान युग में भारतीय वास्तुकला में नई धारणाएं आईं। स्तूप पूजा का पात्र बन गया। अशोक ने हजारों स्तूप निर्मित किये किन्तु उनके वास्तविक आकार का पता नहीं चलता। धर्मराजिका स्तूप के भग्नावशेष मिले हैं। सम्भवतः उनमें हरमिका तथा छत्र का अीाव था। भगवान बुद्ध को महापुरूष मान कर कालांतर में आकार–प्रकार जोड़े गए। सांची स्तूप की आरंभिक अवस्थ टीले के रूप में थी, जिस पर शुंगकाल में प्रस्तर बिछाए गए। अर्द्धगोलाकार भाग को अंड का नाम देते हैं। यानी अंड पर प्रस्तर लगाया गया, ताकि वह चिरस्थायी हो सके। सांची में अशोक स्तम्भ की प्राप्ति से स्तूप की तिथि निश्चित हो जाती है। ईसा पूर्व द्वितीय शती में हीनयान मतानुयायियों ने स्तूप का विस्तार किया होगा, जिसके फलस्वरूप सांची का मुख्य स्तूप आज भी खड़ा है।

दक्षिण भारत में स्तूपों का आकार उत्तरी भारत के स्तूपों से कुछ भिन्न दिख पड़ता है। चबूतरे तथा अंड की बनावट में भिन्नता है। दक्षिण भारत में अमरावती के अंड पर नाना प्रकार की कारीगरी दिख पड़ती है। अंड संगमरमर के प्रस्तर से ढका है और प्रत्येक टुकड़े पर बौद्ध धर्म के प्रतीक या कथानकों का प्रदर्शन दृष्टिगोचर होता है। भारतीय स्तूपों में अमरावती के चित्रित अंउ को छोड़ कर सर्वत्र स्तूप का अर्द्धगोलाकार भाग अनलंकृत है। अमरावती की इस विशेषता का परिचय अन्यत्र दिया जाएगा।

मौर्य–युग में स्तूप की पवित्रता को बचाने के लिए स्तूप के चारों तरफ गोलाई में तीन या चार फीट की दूरी पर एक वेदिका बनायी गई थी, जो बांस की बनी हुई थी। ग्रामीण जीवन में पशुओं के लिए बांस से घिरा बेड़ा बनाया जाता है ताकि बाहर से कोई आसानी से प्रवेश न कर सके या पशु बाहर निकल न जायें। इसी बांस का बेड़ा का अनुकरण वेदिका में किया गया। उस वेदिका के भीतर सर्वसाधारण का प्रवेश वर्जित था। बाहरी अपवित्र संसार से स्तूप की पवित्रता को सुरक्षित रखने के लिए वेदिका की कल्पना उपस्थित की गई। यजुर्वेद में भी ऐसा वर्णन आता है कि समाधि के चारो तरफ मिट्टी की घिराव तैयार करते, जिससे समाधि की पवित्रता बनी रहे या सुरक्षा हो सके। इसी वैदिक प्रथा का पालन स्तूप की वेदिका से किया गया। अंड तथा वेदिका के मध्य प्रदक्षिणापथ रहता है, जिसका प्रयोग उपासक करते रहे।

सांची या भरहुत की वेदिकाओं के प्रस्तरों पर अभिलेख खुदे हैं, जिससे प्रकट होता है कि शुंगकाल में तैयार हुआ थी। विदिशा में श्रेष्ठियों के भी नाम खुदे है। वेदिका पर हाथी–दांत के कारीगरों के नाम अंकित है। उन सभी अभिलेखों के अध्ययन से पता चलता है कि ईसा पूर्व द्वितीय शती में प्रस्तर की वेदिका तैयार की गई।

समाधि को पवित्र रखने के अतिरिक्त वेदिका का उद्देश्य बहुत महत्वपूर्ण था। भरहुत, बोधगया एवं अमरावती की वेदिकाएं अतीव सुंदर रीति से खुदी हैं।


Chattra
Harmika
Dome
Torana
Balustrade
stairs
0 10 m
0 30 ft

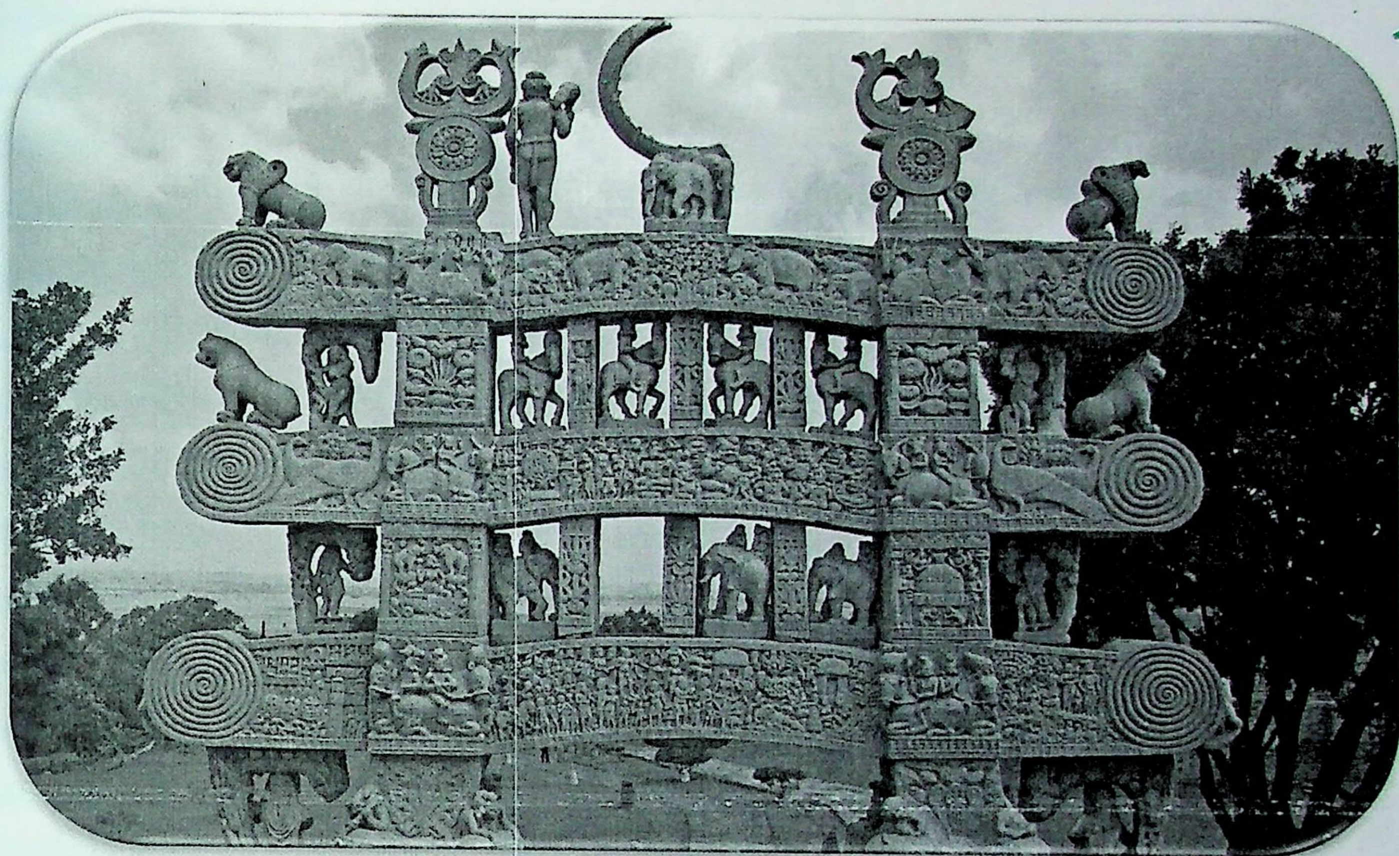
इस अलंकरण का मुख्य प्रयोजन आकर्षण था कि चित्रित एवं भव्य वेदिका को देखने के निमित्त जनता आवेगी। उसके अलंकरणों तथा कथानकों या ऐतिहासिक विषयों का प्रदर्शन देखकर बौद्धमत की ओर आकर्षित होगी। इस प्रकार वेदिका बौद्ध धर्म के प्रचार का माध्यम भी समझी जा सकती है। बौद्धमत के प्रतीकों तथा भगवान् के महान चमत्कारों को देखकर जनसाधारण को प्रभावित करना भी वेदिका निर्माण का उद्‌देश्य था। उन उद्‌देश्यों की पूर्ति वेदिकाओं द्वारा हुई भी। भरहुत की वेदिका पर साधारण व्यक्तियों की जानकारी के लिए भी अंकित है। परन्तु क्रमशः इसे समाप्त कर दिया गया, बोधगया तथा अमरावती में अभिलेखों के लिए स्थान नहीं था। सांची की वेदिका अनलंकृत है। सुन्दर चिकने प्रस्तरों से बनी है। कारीगरों या दानकर्ताओं के नाम खुदे हैं। वेदिका के एक भाग पर गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय का लेख भी खुदा है।

वेदिका के चार भाग हैं–

1. आलंबन
2. स्तम्भ
3. सूची
4. उष्णीस

आलंबन कार्य स्तम्भन को सीधा रखना है, अतएव पृथ्वी के नीचे स्थित रहता, जिसे देखा नहीं जा सकता। अन्य तीनों भाग पूर्ण रूप से अलंकृत हैं। (सांची को छोड़कर)

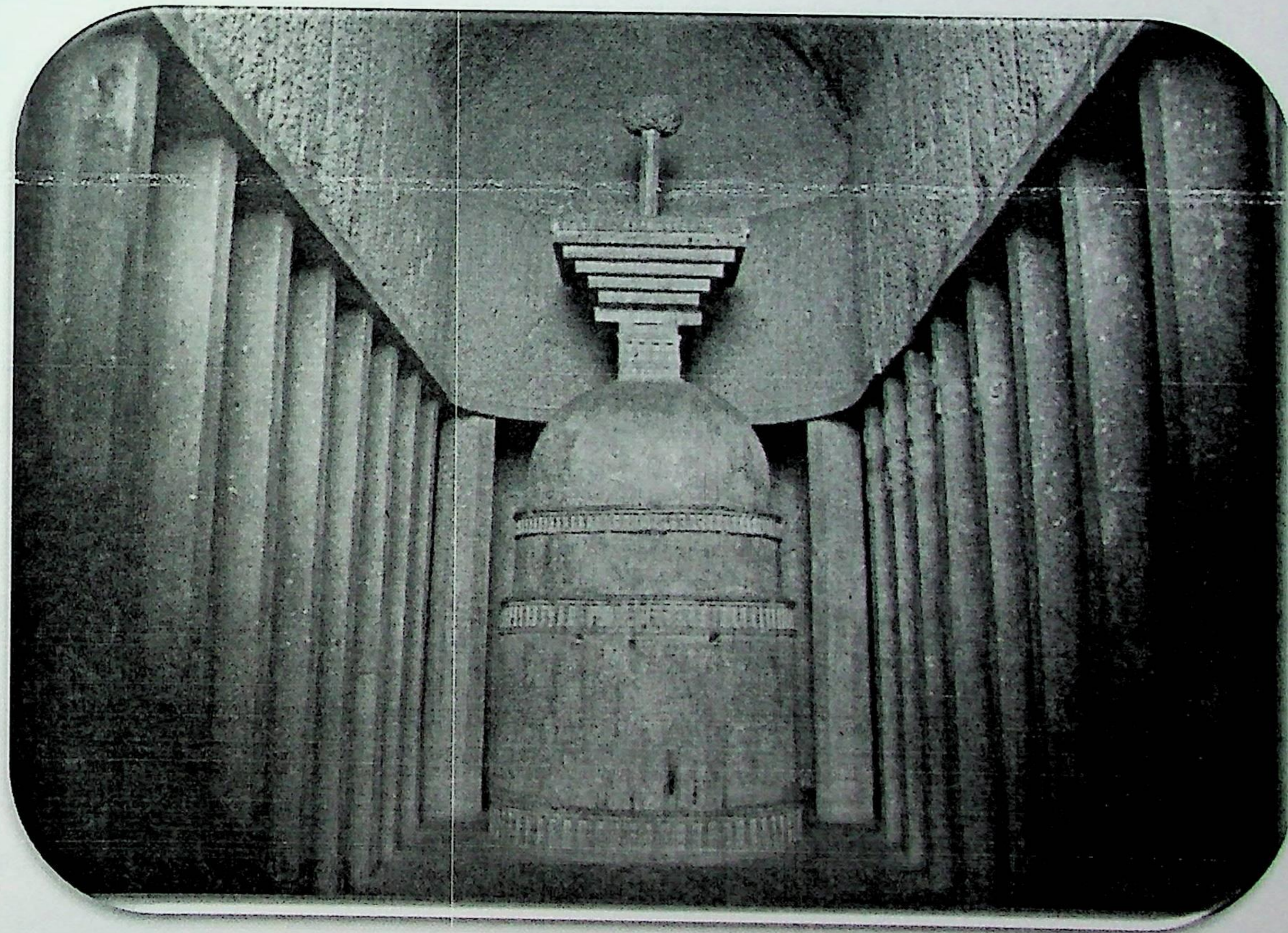
स्तूप से संबंधित वेदिका के चारों दिशाओं में तोरण (तोर= जाना) बने हैं। जिनमें दो स्तम्भ ऊपरी भाग में बंडेरियों से बंधे हैं। भरहुत में तोरण का आंरभ अवश्य हो गया था, परन्तु बौद्ध कला में सांची के तोरण सर्वप्रसिद्ध है, जो वेदिका के साथ –साथ निर्मित नहीं हुए थे। समय के बाद इन्हें जोड़ दिया गया। तोरण में ऐसा कोई स्थल नहीं, जो अनलंकृत हो। उन पर हीनयान कला, बुद्ध के प्रतीक, जातक प्रदर्शन तथा चमत्कारों को दर्शाया गया हैं सांची तोरण की कला सर्वोत्तम मानी जाती है।



सांची तोरण के परीक्षण से पता चलता है कि तोरण विभिनन काल में तैयार किये गये थे। एक साथ सबाका निर्माण नहीं हुआ। वैदिक परम्परा को मान कर दक्षिण का तोरण सर्वप्रथम निर्मित हुआ, जिसकी बंडेरी पर सातवाहन नरेश सातकर्णि का नामोल्लेख है। ब्राह्मण ज्योतिष में उत्तरायण तथा दक्षिणायन से सूर्य की अवस्था बतलाई जाती है। दक्षिण राक्षसों तथा यमराज की दिशा है। अतएव मकान का दक्षिण भाग पहले ऊंचा बनाया जाता हैं सांची का दक्षिण तोरण सबसे पहले तैयार किया गया, जिससे असुंदर तथा बुरी प्रवृतियां बाहर चली जाएं। उसके पश्चात उत्तरी तोरण बना। पूर्वी तथा पश्चिमी तोरण का क्रम उसके अनंतर आया।

चैत्य में स्तूप

समतल भूमि या पहाड़ी पर निर्मित स्तूपों का विवरण उपस्थित करते समय, पहाड़ों की गुफाओं में चट्टानों को काट कर स्तूप के आकार की ओर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। यह पहले कहा जा चुका है कि स्तूप तथा चैत्य पर्यायवाची शब्द हैं। इस कारण जिस गुहा में पहाड़ काट कर स्तूप बना है, उसे चैत्य नाम दिया गया है। स्तूप की उपस्थिति से उसके नाम में विभेद हो गया।



हीनयान युग में स्तूप–पूजा का प्रचार हो गया था। अशोक के बाद भी यह पूजाक्रम चलता रहा। शुंगकाल में पहाड़ खोद कर भिक्षुगण के निवास के लिए स्थान तथा समीप में पूजा हेतु स्थल यानी चैत्य उत्कीर्ण किये गये। उन चैत्यों को घोड़े के

नालनुमा आकार में तैयार किया जाता था। नाल की बाहरी सीमा पर गुहा में तीन द्वार खोदे जाते थे और नाल के भीतरी भाग के समीप स्तूप का आकार कलाकार प्रस्तर काट कर प्रस्तुत करते थे। चैत्य में दीवार की ओर दोनों तरफ गलियारे छोड़ते हुए स्तम्भों की पंक्तियां है। इनके सिरे से लगी काठ की पट्टियां अंडाकार छत को छादन करती हैं। स्तूप के सामने का भाग पूजा–स्थान मानते हैं। चैत्य की दीवारों तथा स्तंभों के मध्य में रिक्त स्थान उपासकों के लिए सुरक्षित था। एक द्वार से जाकर स्तूप के पीछे से होकर उपासक दूसरी ओर पहुंच जाता है तथा विपरीत द्वार से बाहर चला आता है। निचले भाग में द्वार तथा उसके ऊपर चंद्रशाला वातायन बनाया गया है। ताकि स्तूप पर सूर्य का प्रकाश पड़ सके और पूजा में उससे सहायता मिल सके। चूंकि चैत्य में स्तूप की पर्वत को काट कर बनाए गए है, अतः उनमें मेधी का अभाव है, किन्तु चबूतरे पर स्तूप उत्कीर्ण कर हुआ है, अतएव समतल भूमि की वेदिका का अभाव है, उपासक गलियारे से होकर प्रदक्षिणा कर लेते हैं। अंड के ऊपरी भाग में हरमिका निर्मित है, जिसकी बनावट यज्ञवेदी के सदृश है। हरमिका में छत्रमय यष्टि स्थापित है यानी पर्वत खोद कर समतल भूमि पर निर्मित स्तूप सदृश संपूर्ण आकार दृष्टिगोचर होता है।

स्तूप का दार्शनिक विश्लेषण

स्तूप के आकार के संबंध में जो कुछ भी बाह्य रूप से ज्ञात होता है उसकी पृष्ठभूमि में दार्शनिक विचारधारा काम करती रही। यह सर्वसम्मति से मान लिया गया है कि वैदिक परम्परा का बौद्ध मत में पालन किया गया था, किन्तु समयानुकूल एवं परिस्थिति के अनुसार बौद्ध कलाकारों ने प्राचीन वास्तुकला में परिवर्तन अथवा परिवर्द्धन किया था। स्तूप के आकार का विश्लेषण यह प्रकट करता है कि प्रत्येक भाग का निर्माण किसी विशेष उद्‌देश्य से किया गया था। यहां उसी दार्शनिक पहलू पर विचार करना युक्तिसंगत होगा। ब्राह्मण मत में क्षितिज से मिलता हुआ आकाश तथा उसके ऊपर देवलोक की कल्पना करते हैं। यही भारतीय परम्पराओं में आकाश स्वर्ग का परिचायक है, यही ब्रह्मांड है, जिसके विषय में ऋषियों ने विचार–विमर्श किया है। उसी सिद्धांत की अभिव्यंजना स्तूप से की जाती है। ऊँचे चबूतरे (जिसे संसार माना जाता है।) पर अर्द्धगोलाकार स्तूप है, जिसे अंड कहा जाता है। अर्द्धवृत का आकार होने के कारण स्तूप को अंतरिक्ष से सदृश मानते हैं। उसी अंड के ऊपरी भाग में हरमिका को स्थान दिया गया है। वह देवलोक है। उस स्थान पर भस्मपात्र को रखते थे। यानी वह बुद्ध की राख के निमित्त निर्मित है या इसे बुद्ध का कल्पित निवासस्थान मानते हैं। उसी भाग से छत्रयष्टि निकलती दिख पड़ती है। प्राचीन काल में छत्र राजत्व का प्रतीक समझा जाता था। यही कारण है कि बुद्ध को राजसी प्रतिष्ठा देने के लिए छत्र का निर्माण किया गया। जिस स्थान पर स्तूप पर छत्र दीख पड़ता है, उसी भावना का द्योतक है। कई स्थानों पर उसका अीाव है, किन्तु उसकी स्थिति को भुलाया नहीं जा सकता। चैत्यगृहों में भी छत्र वर्तमान है। जातक प्रदर्शनों में जिस रूप में बुद्ध का प्रकटीकरण किया गया है, उस स्थान पर छत्र दृष्टिगोचर होता है। सांची के तोरण पर हाथियों के मसतक पर स्थित भस्मपात्र के ऊपर छत्र दिखलाया गया है। षडदंत जातक के छह दांत वाला हाथी बुद्ध का प्रतीक है, उसी सिरे पर भी छत्र दीख पड़ता है। इस देवलोक में निवास करने वाले महान् देव के सिरे पर छत्र रखता नितांत समुचित हैं हरमिका के ऊपर सृष्टि के लोकों की संख्या छत्र के द्वारा व्यक्त की जाती है।

तीन छत्र की तीन भुवन से समता करते हैं। किसी स्थान पर सात छत्र दीख पड़ते हैं, जो सप्तलोक के परिचायक हैं। बौद्ध स्तूप के छत्र की संख्या इससे अधिक नहीं मिलती, किन्तु भाजा गुहा में चौदह स्तूपों का निर्माण एक साथ दिखलाई पड़ता है। विद्वानों का मत है कि इनसे चौदह भुवनों का बोध होता है। ब्राह्मणमत की परंपरा को बौद्धमत में साक्षात्कार किया गया ।

मेधी का वैदिक स्वरूप है, अतः स्तूप के समीपस्थ चबूतरों पर प्रदक्षिणा–मार्ग बना है। समतल भूमि पर भी वेदिका तथा स्तूप के मध्य चौड़ा प्रदक्षिणा–पथ है, जो वैदिक प्रणाली की याद दिलाता है, यजुर्वेद में समाधि को पवित्र समझ कर संसार की अशुद्धियों से पृथक् करने के लिए मेड़ के निर्माण का वर्णन आता है। उसी विचार को स्थायी रूप देने के निमित छोटे बाध को प्रस्तर की वेदिका के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। उपासक मेधी का प्रयोग न कर निचले प्रदक्षिणा–मार्ग पर परिभ्रमण करते थे। वेदिका अलंकरण करने का कार्य ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में आरंभ हुआ, जब काष्ठ की वेदिका को प्रस्तर द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। साधारण जनता को बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट करने का यह भी साधन था। उसी प्रकार कालांतर में तोरण निर्मित हुए और उन्हें भी नाना प्रकार के प्रदर्शनों से अलंकृत किया गया।

स्तूप निर्माण की परम्परा

भारत वर्ष में स्तूप–निर्माण के इतिहास का गंभीर अनुशलीन किया जाय और वैदिक परम्परा का विशेलेषण किया जाय, तो स्पष्ट विदित होता है कि वैदिक युग से मध्यकाल तक स्तूप–निर्माण की परम्परा भारत में वर्तमान थी। जिस उद्देश्य को लेकर बौद्धकाल में स्तूप निर्मित हुए, उनके मूल स्वरूप एवं विचार को वेदों में निहित पाते हैं। शुक्ल यजुर्वेद को निम्न मंत्र में यह आदेश दिया गया है कि समाधि के चारों तरफ मिट्टी का ऊँचा टीला बनाया जाय–

इयं जीवेभ्यः परिधि दधामि मैषां नु गादपुरो अथर्थमेतम्।

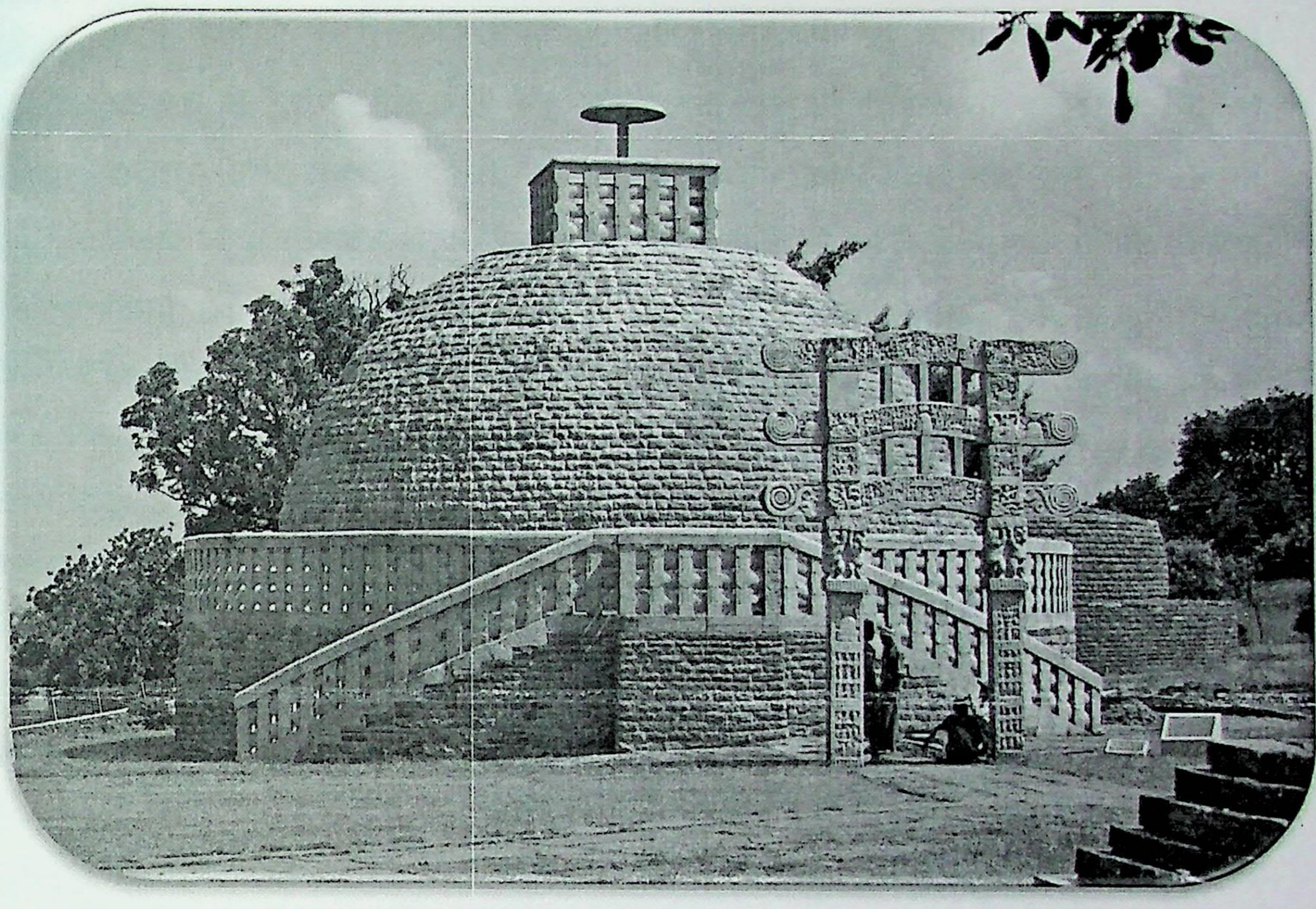
महीधरभाष्य की टीकायें भी इसी को स्पष्ट करती हैं–

स्व निवास ग्रामस्य श्मशानस्य च मध्ये मार्यादालोष्टं महत्रं मत्खण्ड मध्वर्युरेव निदधाति।

इसका तात्पर्य है कि श्मशान की पवित्रता रखने के लिए ग्राम तथा समाधि के मध्य में टीला तैयार किया जाय। यानी समाधि तैयार करने का कार्य वैदिक युग में प्रारमीह ो गया था। शतपथ ब्राह्मण में श्मशान को किसी आकार (गोल या चौकोर) में निर्मित करने का विवरण मिलता है–

तेऽदिक्काः पराभवं स्तस्माद्या देव्यः प्रज्ञाश्चतुः स्त्रक्तीनि ताः श्मशानानि कुर्वेतऽथ। या आसुर्यः प्राच्यास्त्वत्येत्वपरिमण्डुलानी।

इस प्रकार के अंत्येष्ठि टीले का भग्नावशेष लौरिया नंदन (जिला चंपारण, बिहार) में मिला है। यह स्तूप 83 फीट ऊँचा है और इसका निर्माण तीन पंक्तियों में हुआ है। उस स्थान की खुदाई से सोने की पत्थर की बनी देवी आकृति सहित उपलब्ध हुई है। इसे मातृदेवी से तुलना करते हैं। तात्पर्य यह है कि लौरिया का टीला अत्यंत प्राचीन है। इस स्थान पर यूप तथा स्तूप दोनों आकार प्रकाश में आये हैं।



वैदिक यूप का ही रूप बौद्धों ने स्तूप में भावात्मक अनुकरण किया। अतः वैदिक परम्परा का स्वरूप लौरिया नन्दन स्तूप में विद्यमान है।

ईसापूर्व छठी या सातवीं सदी के वैशाली में निर्मित स्तूप का विवरण दीघनिकाय में पाया जाता है। भगवान् बुद्ध ने लिच्छिवयों के स्तूप का उल्लेख किया था। महापरिनिव्वान सूत में वर्णन किया गया है कि वज्जिसंघ में भीतर तथा बाह चैत्यों का मान करते थे तथा उनकी पूजा भी होती थी–

वज्जि चेतयानि अव्यंतरानि चव।

भगवान् बुद्ध ने स्वयं वृज्जिसंघ की प्रशंसा की थी। उनका कथन था, महापुरुषों की राख पर समाधि बनायी जाय। संभवतः वैशाली में ऐसे स्तूप का निर्माण हो चुका था। बुद्ध निर्वाण के पश्चात् उनका अवशेष आठ भागों में विभक्त कर दिया गया,

जिसका वर्णन पिछले पृष्ठ में किया गया है। आठ अवशेषों पर आठ स्तूप बनाए गए। वैशाली के लिच्छवि तथा अजातशत्रु द्वारा निर्मित चैत्यों की जानकारी है। महावंश में वर्णन मिलता है कि अशोक ने धर्म को चिरस्थायी करने के निमित्त राजगृह तथा अन्य स्तूपों से भगवान् के अवशेष को निकल कर उन पर चौरासी हजार स्तूप बनवाये। स्तूप–निर्माण के संबन्ध में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी उल्लेख किया है। इस प्रसंग में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि मौर्य से पूर्व निर्मित स्तूपों में पिपरावा, बस्ती, उत्तरप्रदेश को प्रधान माना जा सकता है। उसके भस्मपात्र पर लेख खुदा है, जिसमें शरीर–स्थापना का वर्णन है। तथा उस लेख के अक्षरों से अशोक ब्राह्मी से पहले की लिपि प्रकट होती है। अतएव वैदिक युग से अशोक–काल तक स्तूप की परम्परा उत्तरोतर बलवती होती गई। अशोक के द्वारा निर्मित हजारों स्तूपों में तक्षशिला तथा सारनाथ का धर्मराजिका स्तूप विशेष उल्लेखनीय है, जिनके भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। धमेक स्तूप, सारनाथ तथा नालंदा के ईंटों के स्तूप आज भी खड़े दिखलाई पड़ते हैं। अन्य स्तूपों के बारे में विशेष रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है। निग्लीव सागर स्तंभ लेख में अशोक द्वारा कनकमुनि के स्तूप की द्वितीय बार मरम्मत करने का वर्णन है–

छेवानं पियेन पियदसिन लाजिन चौदह वसा (भिसी) तेन बुधस कोनाकमनसथुवे (स्तूप) दूतियं वढ़िते।

इतना ही नहीं, सांची–तोरण पर एक दृश्य खुदा है, जिसमें अशोक रामग्राम के स्तूप–पूजा निमित्त हाथी पर सवार प्रदर्शित किया गया है। इससे यह विदित होता है कि स्तूप–पूजा का प्रचार मौर्य–युग में हो गया था। साहित्य तथा पुराततव की सामग्रियों के आधार पर उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है तथा अशोक द्वारा स्तूप–निर्माण की बातें प्रमाणित होती है।

अशेक के उत्तराधिकारी शुंग नरेशों ने भी स्तूप निर्माण को प्रोत्साहित किया। यद्यपि वे बौद्ध मतानुयायी न थे, परन्तु उत्तरी भारत में भरहुत तथा बोधगया में अनेक स्तूप शुंगकाल में तैयार किए गये। भरहुत की वेदिका पर एक लेख खुदा है, जिसमें वर्णन आया है कि शुंग राजा के शासनकाल में यह स्तूप तैयार किया गया। इसका

दूसरा प्रमाण यह है कि बोधगया तथा भरहुत की वेदिकाओं पर हीनयान संबंधी प्रतीक या कथानक खुदे हैं ईसा पूर्व सदियों में हीनयान मत की प्रधानता थी, इसि कारण तत्संबंधी जितने कलात्मक नमूने उपलब्ध हैं, सभी शुंगकालीन माने जाते हैं। मौर्य लोगों के दक्षिण भारत के उत्तराधिकारी सातवाहन नरेशों ने भी अमरावती तथा उसके समीपस्थ अन्य स्तूपों के निर्माण में सहायता की थी। अमरावती के अधिक कलात्मक नमूने हीनयान मत से संबंधित हैं, जिनकों सातवाहन राजा शातकर्णि के शासनकाल में तैयार किया गया। सांची–तोरण के संबंध में भी ऐसी बातें कही जा सकती है। दक्षिण द्वार के तोरण पर स्तूप के प्रतीक पर एक छोटा लेख खुदा है, जिसमें वर्णन आया है कि शातकर्णि के समय में वण तोरण निर्मित हुआ था। सांची के मुख्य स्तूप को प्रस्तर–खंडों से ढंकने का कार्य शुंग काल में ही हुआ था।

अतएव यह कहना यथार्थ होगा कि अशोक द्वारा स्थापित स्तूप–पूजा की परम्परा तथा गोलाकार स्तूप का निर्माण शुंगकाल में निर्विघ्न रूप से चलता रहा।

शुंगकाल में स्तूप की वेदिकाओं को स्थायित्व दिया गया। इस काल से पूर्व लकड़ी की वेदिकाएं थी, जो ग्राम के पशु–बेड़ा के अनुकरण पर तैयार की गई थीं। बांस या काष्ठ की वेदिकाओं को हटाकर प्रस्तर को स्थान दिया गया। इसका प्रमाण यह है कि भरहुत एवं सांची की वेदिकाओं के स्तंभ या उष्णीस पर उन दानकर्ताओं के नाम खुदे हैं, जिन्होंने उस अंश के तैयार करने का बोझा उठाया था अथवा उसे तैयार करने का पूरा धन दान दिया था। यही कारण है कि वेदिकाओं पर खुदे लघु लेख में अंतिम शब्द 'दानं' अंकित है। यह कार्य सामूहिक रूप में जनजागृति का द्योतक है।

कनिष्क ने चौथी बौद्ध संगीति बुलाई थी तथा उसी काल से महायान मत का शुभारंभ हुआ। गांधार के भूभाग में अनगिनत बौद्ध–प्रतिमाएं तैयार की गईं। कनिष्क के शासनकाल में अनेक स्तूप उत्तर–पश्चिम भारत में निर्मित हुए थे। बीमरान के स्तूप के भस्मपात्र पर बुद्ध की प्रतिमा बनी है। कुरम का स्तूप अपनी प्रमुखता रखता है। गांधार से यह परम्परा अफगानिस्तान तथा मध्य ऐशिया में पहुंच गई, जिसका श्रेय कनिष्क को है।

कुषाण–युग के बाद स्तूप–निर्माण का कार्य क्षीण हो गया। इसका अर्थ यह नहीं है कि परम्परा अवरूद्ध हो गई थी, पर उस कार्य को कालांतर में राजकीय प्रश्रय अथवा सहायता नहीं मिली। बौद्ध उपासक या उपासिका उस कार्य में संलग्न थे, पर विशाल स्तूप की योजना उनके सम्मुख न थी। गुप्तकाल तक पूजा के निमित्त मनौती स्तूप का आकार मुख्य स्तूप की चारों दिशाओं में निर्मित होते रहे। उनके स्वरूप सारनाथ के धर्मराजिका स्तूप तथा नालंदा स्तूप के चारों ओर आज भी देखे जा सकते है। उत्तर–गुप्त युग में हर्षवर्द्धन बौद्ध मतानुयायी माना जाता है। परन्तु प्रभाकर वर्धन की समाधि के अतिरिक्त अन्य किसी स्तूप–निर्माण का श्रेय उसे नहीं मिला।

राजनैतिक कारणों से स्तूप–निर्माण का कार्य रूक–सा गया था, किन्तु धार्मिक जनता में बड़े स्तूप के निर्माण की कल्पना न रही। संभवतः बुद्ध के अवशेष के अभाव में पूर्वकालीन स्तूपों का अनुकरण सामयिक न प्रतीत हुआ, अतः मनौती स्तूप ही बनते रहे। पहली शती के पश्चात् भगवान् बुद्ध के धातु–शरीर संबंधी लेख अप्राप्य हैं। बौद्ध मतानुयायी अन्य धार्मिक कृत्यों से अपनी धार्मिक पिपासा संतुष्ट करते रहें। गुप्त युग से ही विहार–निर्माण के कार्य को बल मिला और समतल भूमि पर ईंट–प्रस्तर के सहारे विहार बनने लगे। मध्य युग के प्रधान बौद्ध शासक पाल नरेष भी सहिष्णु थे। धर्मपाल ने विष्णु मंदिर को दान दिया तथा नारायण पाल ने अनेक शैव मंदिर बनवाये। नालंदा के स्तूप की मरम्मत तथा नए विहार का निर्माण पाल–युग में हुआ था। अंतिचक, भागलपुर की खुदाई से जो स्तूप निकला है, वह संभवतः पाल–युग में तैयार किया गया था।

स्तूप की परंपरा को भुलाया नहीं जा सकता था, अतः जितनी प्रतिाएं मगध में तैयार हुई थी, उनके पृष्ठ प्रस्तर पर दोनों तरफ स्तूप की आकृतियां दिख पड़ती हैं। मुख्य प्रतिमा के सिरोभाग के पार्श्व में स्तूप का आकार उस प्राचीन परंपरा की याद दिलाता है कि स्तूप की पूजा समाज में प्रचलित थी। इतना ही नहीं, प्रस्तर तथा धातु के लघु स्तूप बनाकर घरों में उपासना करते थे। उनमें चबूतरा, अंड, हरमिका तथा छत्र स्पष्टतया दिखलाए गए हैं। उनके अनेक नमूने मगध प्रदेश से प्राप्त हुए

हैं। कहने का सारांश यह है कि वैदिक प्रणाली को बौद्ध लोगों ने अपनाकर स्तूप को विशाल रूप दिया। वही क्रम कई सदियों तक चलता रहा।

पूर्वमध्य युग से पौराणिक विचारधाराओं का प्रभाव समाज पर बढ़ता गया। नए धार्मिक आकार–प्रकार के निर्माण के अतिरिक्त पुराने क्षतिग्रसत भवनो, मंदिरों तथा स्तूपों का संस्कार भी उतना ही पुण्य कार्य समझा गया। यही कारण है कि विभिन्न राजवंशों के अभिलेखों में ''खंड स्फुट प्रति संस्कार'' वाक्य का प्रयोग मिलता है। लेखों में दान का जिस रूप में वर्णन है, उसमें संकार का भी उल्लेख मिलता है। पालवंशी नरेश बौद्ध होकर ब्राह्मण मंदिरों के तथा अबौद्ध शासक विहार या स्तूप की मरम्मत के लिए दान देते रहे। नालंदा के मुख्य स्तूप का निरीक्षण किया जाय, तो स्पष्ट विदित होता है कि पाल नरेशों ने भी उसका संसकार किया था। इस प्रकार ध्वंस स्तूप को चार या पांच बार विशिष्ट स्तूप का आकार दिया गया। मध्य युग की विचारधाराओं का अनुशीलन यह बतलाता है कि नए स्तूप के निर्माण का प्रयोजन समाप्त हो गया था। नवनिर्माण की बातें गौण पड गई थीं। ठोस प्रस्तर खंड की मनौती स्तूप बनाकर पूजा करने लगे। अतः कहा जा सकता है कि 13वीं शताब्दी तक भारतीय समाज में स्तूप की परंपरा को स्थान प्राप्त था।

स्तूप के अलंकरण

प्रारम्भिक अवस्था में ऊँचे चबूतरे पर मिट्‌टी का टीला बनाया जाता था तथा काठ की वेदिका स्थिर की जाती थी। ऐसी परिस्थिति में उस आधार पर खुदाई की बात सोची न जा सकी। भिक्षुओं के प्रभाव से समस्त भारत में स्तूप–अलंकरण का विचार उत्पन्न हुआ। उसका कारण काल्पनिक न था। जन साधारण ाके स्तूप–पूजा की ओर आकृष्ट करने के लिए कोई योजना तैयार करना भी नितांत आवश्यक था। इन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सफल प्रयत्न किया गया। सर्वप्रथम स्तूप के अर्द्धगोलाकार भाग को प्रस्तर से ढंक दिया गया। तथा लकड़ी की वेष्टनी को स्थायी रूप दिया गया यानी प्रस्तर की वेदिका तैयार की गई। वेदिका पर खुदे लेख से प्रकट होता है कि वेष्टनी के निर्माण में अनेक लोगों का हाथ था। सांची की वेदिका पर विदिसा की श्रेणी या कलाकार के नाम अंकित मिलते है। जिन्होंने उसे तैयार करने में हाथ बंटाया था। तात्पर्य यह है कि अंड के प्रसतर तथा वेदिका के विभिनन भागों को खुदाई का स्थान चुना गया। प्रस्तर के आकार के अनुसार खुदाई का कार्य सम्पन्न किया जाता ाा। उत्तरी ाारत में भरहुत एवं बोधगया की वेदिकाओं को सर्वोत्कृष्ट ढंग से अलंकृत किया गया है। सांची की वेदिका अनलंकृत है, किन्तु तोरण शुंगकला की सर्वोन्नत दशा को व्यक्त करते हैं। इनके अलंकरण भारतीय कला का सर्वोत्तम उदाहरण माने गये हैं। प्रस्तर कला के तीनों अवयव–लंबाई, चौड़ाई तथा गहराई का ऐसा उदाहरण दूसरानहीं मिलता। दक्षिण भारत के अमरावती स्तूप की निजी विशेषता है। स्यात् ऐसा कोई नहीं है, जहां सुंदर खुदाई न दीख पड़े। स्तूप के अंड, वेदिका तथा तोरण सभी भाग अलंकृत है। यह सही है कि सभी कार्य एक साथ संपन्न नहीं हुए, तथापि उनके परीक्षण से एकरूपता प्रकट होती है।

अलंकरण का क्रमिक विकास

स्तूपों पर अलंकरण के विचारों से भरहुत, बोधगया, तत्पश्चात् सांची तोरण की कला विकसित होती है। अमरावती की खुदाई भी सर्वोत्तम समझी गई है। इस क्रम के स्थिर करने का कारण यह है कि भरहुत में थोड़ी सीमा में घटनाओं का जमघट उत्पन्न कर प्रस्तर खुदे है। उदाहरण के लिए जेतवन विहार में अनाथपीडिक द्वारा पृथ्वी खरीद कर विहार निर्माण एवं दान का दिग्दर्शन कराया गया है। सीमित क्षेत्र में बैलगाड़ियों से कार्षापण उतार कर बिछाया जा रहा है। उसी के एक भाग में विहार दीख पड़ता है तथा संलग्न भू–भाग पर विहार को दान करने का दृश्य प्रदर्शित है। छोटे चौकोर स्थान में इतने कार्यों का प्रदर्शन कला की दृष्टि से अव्यवस्थित प्रतीत होता है। भरहुत को प्रारंभिक प्रदर्शन मानने का दूसरा प्रमुख कारण यह है कि उसके उदाहरणों में जीवन–शक्ति का अभाव दृष्टिगोचर होता है। कोई प्रतिमा संचालित न होकर अंग–प्रत्यंग गतिविहीन प्रकट होते हैं। शरीर की संधियां सीमेंट से जुड़ी मालूम पड़ती हैं। मानव–शरीर की गांठ में बल का संचार आवश्यक है। बलहीन जोड़े हुए संधि–भाग भरहुत प्रदर्शन की हीनता के द्योतक हैं। यक्ष, यक्षिणी के अंगों में अनुपात का भी अीाव है। अनुपात की अनुपस्थिति में कलाकार की अक्षमता का परिज्ञान हो जाता है। भरहुत की कला की हीनभावना प्रस्तर पर खुदे लेखों से भी प्रकट होती है। जितने भी प्रदर्शन भरहुत वेदिका या तोरण पर दीख पड़ते हैं, सभी लेखांकित हैं। उसके सहारे प्रदर्शन को समझने में सहायता मिलती है। इतिहासज्ञ इस कार्य में तत्कालीन कलाकार तथा जनता की बुद्धि को मापदंण्ड से घट कर समझते हैं। संभवतः दर्शकों को प्रदर्शित दृश्य के परिाान के निमित्त लेख अंकित किए गये थे। इन सभी कारणों से भरहुत वेदिका शुंगकालीन कला का प्रारंभिक स्वरूप उपस्थित करती हैं। बोधगया में उससे परिष्कृत कलात्मक नमूने है। उनमें जीवन–शक्ति का संचार,प्रमुख घटना का प्रदर्शन, जमघट की कमी आदि विषयों के अनुशीलन से बोधगया को भरहुत से अधिक उन्नत स्थान दिया गया है। बोधगया के कलाकारों ने उदार हृदय के साथ ब्राह्मण मत–संबंधी प्रदर्शनों को भी स्थान दिया था। उदाहरण के लिए– इंद्र, सूर्य व राशियों का काल्पनिक स्वरूप दिखाया गया।

अलंकरण के विचार से सांची–तोरण कला सर्वोत्तम मानी जाती है। यद्यपि प्रदर्शनों का मूल कथानक सर्वत्र समान ही है। यानी एक ही को प्रस्तर खंड पर प्रदर्शित किया गया है, तथापि उनके सौष्ठव तथा उनकी कारीगरी में विभिन्नता है। सांची तोरण के कलाकार अत्यंत दख एवं कुशल कारीगर थे। कला के विभिनन पहलुओं पर विचार करने से उनके गुण तथा उनकी क्षमता का परिज्ञान हो जाता है। सांची–तोरण की कला में जीवनशक्ति तथा रक्त–संचार दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक कथानक में प्रवाह है तथा कलाकार ने मुख्यपात्र को स्थान–स्थान पर प्रदर्शित कर उसमें प्रवाह की सूचना दी है। षड्दंत जातक, बेसंतर जातक एवं भस्म के लिए युद्ध का प्रदर्शन कलात्मक प्रवाह के ज्वलंद उदाहरण हैं कला के मानदंड को ध्यान में रखकर आदर्श तथा वस्तुस्थिति का परिज्ञान करना कला के विशेष गुण माने जाते हैं। सांची–तोरण पर लंबाई, चौड़ाई तथा गहराई को प्रसतर पर सफल रूप में दर्शाया गया है। इसीलिए सांची कला को शुंगकाल की सर्वोत्कृष्ट कला समझते हैं।

दक्षिण भारत में नागर्जुनी तथा अमरावती के स्तूप का अलंकरण शुंगकाल में ही प्रारम्भ हुआ था। अमरावती कला पर मध्य भारतीय कला की झांकी मिलती है। इसके अलंकरण के विस्तृत क्षेत्र में अनेक विषयों का समावेश किया गया है। ईसा पूर्व 200 ये ईसवी सन् 200 वर्षों तक इसका विसतार रहा। चुनार प्रस्तर के स्थान पर संगमरमर का प्रयोग किया गया तथा दक्षिण के कलाकारों ने स्तूप या वेदिका का कोई भी भाग अछूता न रखा। प्रत्येक भाग की स्थिति तथा उपयोगिता पर ध्यान रखकर खुदाई की गई है। उपासकों से स्थान की दूरी को ध्यचान में रखकर कलात्मक प्रदर्शन का रूप छोटा या बड़ा कर दिया गया, ताकि दर्शक पूर्णरूपेण उनका अवलोकन कर सकें। भारतीय वास्तुकला में अमरावती के स्तूप की अपनी विशिष्टता है। दक्षिण के सातवाहन शासकों ने प्रोत्साहित कर अमरावती को श्रेष्ठ बनाया। भारतीय स्तूपों की श्रेणी में उसे उत्कृष्ट स्थान दिया गया।

शुंगकालीन स्तूपों के नाना प्रकार के अलंकरणों का अनुशलीन एवं अशोककालीन कला से तुलनात्मक अध्ययन इस परिणाम तक पहुंचता है कि बोधगया, भरहुत, सांची तथा अमरावती के आलंकारिक प्रदर्शनों में मौर्यकालीन विचारों का अभावात्मक स्वरूप दृष्टिगोचर होता हैं शुंगकालीन प्रदर्शनों में अशोक की कला का निषेधात्मक

रूप है। अशोक के संसंस्कृत विचारों को शुंगकाल में समादन न मिल सका। अशोक के धर्मलेखों में घोषणा की गई है कि आमोद–प्रमोद 'समाज' आयोजित न किया जाय, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद सांसारिक विषयों को लेकर वेदिकाओं पर प्रदर्शन किया गया। नृतय का दृश्य, वाद्य का प्रदर्शन तथा युद्ध की प्रक्रिया को तोरण की बंडेरियों पर दिखलाया गया, जिसका अशोक ने विरोध किया था। अतएव संक्षेप में यह कहना यथार्थ है कि स्तूप की वेदिकाओं तथा तेरण पर मौर्य युगी भावना का प्रतिकूल प्रदर्शन है। अमरावती की यक्षिणी विषयवासनाओं का भावात्मक प्रदर्शन मात्र हैं। शुंगकला का मुख्य लक्ष्य मध्यदेशीय लोगों के सामूहिक चिारों तथा सामाजिक भावनाओं को व्यक्त करना था। यह कला लोगों के मानसिक संकलप से घनिष्ठ संबंध रखती है तथा जनसमुदाय की परंपरा की अभिव्यक्ति करती है। इसीलिए यह कहना युक्तिसंगत होगा कि स्तूप तथा वेदिकाओं का अलंकरण कलाकार की निपुणता एवं दखता का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

हीनयान–सम्बन्धी आलंकारिक प्रदर्शन

बौद्ध भिक्षुओं के सम्मुख स्तूप को सुन्दर बनाने का प्रश्न था, इस कारण खुदाई का कार्य आरम्भ किया गया। वेदिका स्तूप की बाह्य सीमा में स्थित थी, अतएव उन पर एसी खुदाई नितांत आवश्यक थी, जो आकर्ष हो। तथा उपासकों या दर्शकों को स्तूप–पूजा की ओर आकृष्ट कर सके। मनोहारी एवं सुन्दर खुदाई के निमित्त बौद्ध संबंधी विषयों को चुनना भी सर्वोपरि समस्या थी। यह सर्वविदित है कि ईस्वी पूर्व सदियों में हीनयान मत का प्रचार तथा प्रसार था, जिसे अशोक के धर्मदूतों ने विदेशों में फैलाया था। हीनयान मत में बुद्ध महापुरुष चक्रवर्ती के रूप में समादर पाते रहे। तात्पर्य यह है कि उनमें देवत्व के अभाव होने से प्रतीक–पूजा की प्रधानता थी। शुंगकालीन कला प्रतीकात्मक है। भगवान बुद्ध के जीवन से संबद्ध प्रतीक पूजित होने लगे। बुद्ध के प्रमुख चार प्रतीक जीवन–घटना के द्योतक थे–

1. हस्ति जन्म का
2. वृक्ष ज्ञान का
3. चक्र धर्मपरिवर्तन का
4. स्तूप महापरिनिर्वाण का

अशोक ने स्तूप का निर्माण कर पूजा–प्रक्रिया आरी की। इसके दार्शनिक विश्लेषण की जानकारी हो जाने पर स्तूप–निर्माण की वास्तविकता समझ में आ जाती है। अशोक को धर्मलेख खुदवाने के साथ समतल भूमि पर स्तूप–निर्माणः का सरल ज्ञान हुआ। उस समय तक स्तंभ के अतिरिक्त अन्य वास्तुकला में प्रस्तर का समावेश न हो सका था, जिसे शुंगकाल में सम्पनंन किया गया। वैदिक परम्परा तथा भगवान बुद्ध के आदेशानुसार स्तूप का निर्माण हुआ और वेदिका को स्थायी रूप दिया। उन्हें आकर्षक बनाने के लिए ही खुदाई शुरु की गई। तत्कालीन धार्मिक विचारधारा से संबंधित चित्र खोदे गये। इसी विचार ने सभी कलाकारों को प्रभावित कियां यदि भरहुत, बोधगया तथा अमरावती की वेदिकाओं एवं सांची–तोरण पर खुदे उदाहरणों का विश्लेषण किया जाय तो पता चलता है कि हीनयान संबंधी प्रदर्शनों की बहुलता है। ईसवी पूर्व दूसरी सदी तक जातक ग्रन्थों का संकलन हो चुका था, जिनमें

भगवान बुद्ध के 550 पूर्वजन्म की कथाओं का वर्णन किया गया है। कलाकारों का धार्मिक साहित्य भी मार्ग प्रदर्शन करते हैं या उन्हें प्रेरणा देते है। यही कारण था कि भिक्षु कलाविदों ने वेष्टनी तथा तोरण पर जातक प्रदर्शन भी किया था। सभी वेष्टिनियों पर कुछ समान रूप से प्रदर्शन हैं या एक ही जातक सर्वत्र प्रदर्शित हैं किन्तु कलात्मक श्रेणी तथा मानदंड में भिन्नता है जो स्वाभाविक भी है। स्थान तथा व्यक्ति की कुशलता का प्रभाव पड़ना अस्वाभाविक नहीं है। अतएव शुंगकालीन वेदिकाओं पर खुदे तथा तोरण पर प्रदर्शित दृश्यों का परीक्षण निम्न परिणाम पर पहुंचता है–

1. हीनयान–संबंधी बुद्ध के प्रतीक
2. जीवन–संबंधी अन्य घटनाएं
3. जातक प्रदर्शन
4. ऐतिहासिक दृश्य,
5. वेदिकाओं का अधार्मिक अलंकरण
6. समाजिक विषयों का प्रदर्शन
7. यक्ष, नाग आदि को स्थान तथा
8. ब्राह्मण धर्म से संबंधित चित्र।



बुद्ध के चार प्रधान प्रतीक

भगवान् बुद्ध के मूर्ति–निर्माण से पूर्व हीनयान के कलाकारों ने जीवन की चार प्रमुख घटनाओं को नाना प्रकार से प्रदर्शित किया है। जन्म का प्रमुख प्रतीक हाथी माना गया है, जिसका संगंध एक कथानक से जोड़ा जाता है। एक कथानक है कि बोधिसत्व के रूप में भगवान तुषित स्वर्ग में बैठे मनोविनोद कर रहे थे। उसी समय उनसे प्रार्थना की गई कि संसार में अतीव कष्ट है, दुख हैं उनसे बचने का कोई मार्ग निकालिए। मनुष्यों की बात सुनकर तुषित स्वर्ग में देव ने भविष्यवाणी की कि वह संसार को विमुक्त करने वाले हाथी के रूप में कपिलवस्तु की रानी माया देवी के गर्भ में प्रवेश कर विश्व में अवतरित होगा। यह वाणी राम एवं कृष्ण के जन्म की याद दिलाती है। भविष्यवाणी हुई थी कि भगवान् दशरथ की महारानी कौशल्या के गर्भ में आयेंगे। कृष्ण के संबंध में भी ऐसी ही भविष्यवाणी देवी ने की थी। जेल में कृष्ण का अवतार हुआ था। उसी परम्परा में गौतम का जन्म भी माना गया है। बोधिसतव के कथनानुसार सफेद हस्ति के स्वरूप में गौतम ने अवतार लिया। इस घटना का प्रदर्शन वेदिकाओं एवं तोरण पर दिखता है। भरहुत तथा बोधगया की वेदिका पर मायादेवी सोयी हुई प्रदर्शित है तथा एक हाथी का आकार शय्या के ऊपरी भाग में खुदा है। अमरावती में इसको एक ही प्रसतर की तीन विभिनन सीमा में खोदा गया है। पहले दृश्य में बोधिसतव तुषित स्वर्ग में बैठा है। नृत्य गान हो रहा है। दूसरे दृश्य में एक रथ पर हाथी बैठा है। यानी वह स्वर्ग से संसार की ओर जा रहा है। तीसरे दृश्य में माया देवी सोयी है। इस प्रकार अमरावती की वेष्टनी पर पूरे कथानक का प्रदर्शन हैं अन्य स्थलों पर केवल माया देवी का सपना कहने पर उस घटना का परिज्ञान करते हैं।

सांची–तोरण पर बुद्ध जन्म का प्रदर्शन कुछ विशेष प्रतीक द्वारा भी किया गया है। तोरण के कल्पित शीर्ष पर कमल पर आसीन देवी की आकृति खुदी है। इस देवी को माया देवी कहते हैं। दूसरा दृश्य इसी प्रकार स्थानक दशा में कमल पर खड़ी



देवी का है। तीसरे दृश्य में जन्म का प्रदश्नन गजलक्ष्मी से करते हैं। जिसमें दो हथनियां कमल पर खड़ी देवी पंर घड़ों से पानी डाल रही है।

माया देवी के सपना सहित इन तीनों प्रदर्शनों को जन्म से संबंधित करते हैं। दूसरी प्रधान धटना गौतम की बुद्धत्व प्राप्ति से है। इसके पूर्व के दा कथानक इससे संबंध किये जा रहे हैं। गौतम ने तपस्या के लिए कपिलवस्तु के बाहर जाना सोचा। उस घटना को महाभिनिष्क्रमण कहते हैं। ललितविस्तर में वर्णन आया है कि घोड़े की

पीठ पर सवार होकर गौतम ने नगर से बाहर जाकर अपने परिचायक छंदक को घोड़ा वापस ले जाने की आज्ञा दी। इसलिए कपिलवस्तु छोड़ने की घटना केवल घोड़े से व्यक्त की जाती है। हीनयान मत में घोड़े की आकृति उस घटना का द्योतक है। सांची के पश्चिमी तोरण की मध्य बंडेरी पर महाभिनिष्क्रमण कलात्मक ढंग से दिखलाया गया है। नगर के दरवाजे से घोड़ा बाहर जा रहा है। बीच के भाग में वृक्ष की आकृति खुदी है, जो बुद्ध का द्योतक है। यानी गौतम तपस्या में लगे हैं। उस दृश्य के ऊपरी भाग में दो घोड़ों का चित्र है। सिरे पर छत्र है, जिससे पता चलता है कि घोड़ा जंगल से कपिलवस्तु को वापस जा रहा है।

गौतम की तपस्या के क्रम में बुद्धत्व से पूर्व ही सांची के तोरण पर मार–विजय का दृश्य खुदा हैं ऐसा मार्मिक तथा जीवित दृश्य अन्यत्र कहीं नहीं दिखता है। तोरण की बंडेरी पर वृक्ष को बुद्धत्व का प्रतीक मान कर मार की राक्षसी सेना प्रस्तर तथा वृक्ष की शाखाएं फेंक कर तपस्या में विघ्न उपस्थित कर रहे हैं। नर्तकी नाच रही है ताकि गौतम की तपस्या भग्न हो जाय। वे संसार की ओर प्रवृत हो जायें निवृति मार्ग से भ्रष्ट हो जायें। मार की सेना एक दिशा से आक्रमण कर रही है और विपरीत दिशा में सैनिक भागते दिख पड़ रहे हैं। कितने मार सैनिक हाथी या घोड़े के पैर–तले कुचल गए हैं। इससे यह विदित होता है कि बुद्ध ने मार पर विजय प्राप्त कर ली। तपस्या सफलीभूत हो गई। ज्ञान मिलने के कारण विषय–वासनाओं की समाप्ति हो गई। मार–सेनानी तपस्वी के सम्मुख ठहर न सके। गौतम परम ज्ञान की प्रभा के कारण प्रज्वलित हो उठा। अज्ञान का विनाश बुद्धत्व का द्योतक है। इसी के साथ सुजाता का दृश्य भी सांची–तोरण पर खुदा है। निरंजना के किनारे गौतम वृक्ष के नीचे बैठे थे। सुजाता ने उन्हें वृक्षदेवता समझ, सोने के पात्र में खीर लाकर सामने रखा। गौतम ने उसे ग्रहण किया। तत्पश्चात् नदी पार आकर पीपल–वृक्ष के नीचे बैझा गौतम सिद्धार्थ तपस्या करने लगे। वहीं बुद्धत्व प्राप्त किया, मार का विनाश किया। ज्ञान प्राप्ति के कारण सिद्धार्थ गौतम का नाम बुद्ध पडा। उस वृक्ष को बोधिवृक्ष के नाम से पुकारते हैं। भरहुत की वेदिका पर कई वृक्षों की आकृतियां खुदी है, परन्तु पीपल–वृक्ष के नीचे 'भवती शक मुर्निनो बोधो' लेख खुदा

है। यानी शक मुनि को ज्ञान मिला। महायान मत में भी बुद्ध को तपस्या करते समय बोधिवृक्ष की शाखाएं सिरे पर दिख पड़ती है तथा भगवान भूमिस्पर्श मुद्रा में बैठे हैं।

सारनाथ स्तीा की चौकी पर चक्र की आकृतियां खुदी हैं। बौद्ध धर्मानुयायियों ने इस प्रतीक को सदा महत्वपूर्ण स्थान दिया है। धर्मचक्र सारनाथ के प्रथम उपदेश का द्योतक है। हीनयान के अतिरिक्त महायान मत में इसे त्याग नहीं दिया गया, किन्तु बुद्ध प्रतिमा के साथ चक्र का संयोग दिखाया गया है। सारनाथ की प्रसिद्ध बुद्ध–प्रतिमा के निचले भाग में चक्र को स्थान दिया गया तथा दोनों ओर दो मृगों की आकृतियां खुदी हैं कालांतर में मगध शैली की बुद्ध प्रतिमा में भी चक्र को स्थान मिला। धर्मपाल की खालीमपुर ताम्रपत्र के ऊपरी भाग में धर्मचक्र अंकित है। कहने का तात्पर्य यह है कि धम्रचक्र की प्रमुखता अशोककाल से बारहवीं सदी तक बनी रही। बुद्धमूर्ति की धर्म चक्र मुद्रा में कलाकार सदा चक्र दिखलाते रहे। महायान मत में बुद्ध के जन्म के प्रतीक हाथी को सदा के लिए त्याग दिया गया, परन्तु वृक्ष तथा चक्र को सदा कला में स्थान मिल पाया। हीनयान के चार प्रधान प्रतीकों (हस्ति, वृक्ष, चक्र एवं स्तूप) में स्तूप को अंतिम स्थान दिया जाता है। जो बुद्ध के महापरिनिर्वाण का द्योतक है। यों तो स्तूप–पूजा का आरम्भ अशोक ने किया था, जो समतल भूमि पर बने थे। किन्तु शुंगकाल में गुहा में पर्वत काट कर अथवा वेष्टिनियों तथा बंडेरियों पर स्तूप को स्थान दिया गया है। यद्यपि प्रधान स्तूप के चारों तरफ वेदिका या तोरण स्थित हैं, तथापि हीनयान के कलाकार इस प्रतीक स्तूप की छोटे आकार में यत्रतत्र खोदते रहे। सर्वत्र स्तूप की पूजा विश्वव्यापिनी रूप में प्रदर्शित है। पशु, पक्षी, मुनष्य, देवता आदि स्तूप की पूजा करते दृष्टिगोचर होते है। भरहुत, बोधगया की वेदिकाओं तथा सांची के तोरण पर स्थान–स्थान पर स्तूप–पूजा का प्रदर्शन है। अमरावती–वेदिका के उष्णीस पर लता के उतार–चढाव के मोड़ पर रिक्त स्थानों पर स्तूप के आकार बने हैं। वे अलंकरण का भी काम करते हैं।

चार गौड चमत्कारों का प्रदर्शन

हीनयान युग में ज़िन चार प्रतीकों को प्रमुखता दी गई थी, वे चार तीर्थस्थान लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ, कसिया से संबद्ध किए जाते हैं। भगवान के चार अन्य चमत्कारों का प्रदर्शन दूसरे चार स्थानों पर हुआ था, जिन्हें गौड रूप देते है–

1. राजगृह में नालाहस्तिदमन
2. श्रावस्ति में जेतवन विहार
3. वैशाली में महाप्रदर्शन
4. संकिसा में तुषित स्वग से अवतरण

इन सब का प्रदर्शन सर्वत्र नहीं पाया जाता। राजगृह में देवदत्त ने संघ की महंथी लेने की इच्छा प्रकट की, परंतु बुद्ध ने इंकार कर दिया। इस कारण द्वेष के कारण एक दिन बुद्ध के ऊपरी भारी चट्टान फेंकी। तत्पश्चात् उन्हें मारने के लिए एक मतवाले हाथी को सामने छुड़वा दिया। नानागिरी चिग्घाड़ करता हुआ बुछ के सामने दौड़ा, किन्तु भगवान के सामने स्थिरचित्त हो चुपचाप खड़ा हो गया। बुद्ध ने उसके सूढ़ को स्पर्श किया। हाथी न उनके चरण रज को सूढ से उठा लिया। इसका प्रदर्शन बोधगया की वेष्टनी पर किया गया है। इसे अमरावती में अत्यंत सुंदर रीति से दिखाया गया है। दूसरा प्रदर्षन चेतवन विहार का है। जिसे बोधगया तथा भरहुत–वेदिकाओं पर प्रदर्शित किया गया है। श्रावस्ती का सेठ श्रेष्ठी अनाथपीडिक ने राजगृह में आकर संघ को निमंत्रित किया कि भगवान् का वर्षावास श्रावस्ती में हो। वह स्थान ब्राह्मण मत का दुर्ग समझा जाता था। अतः धम्र के प्रचार निमित्त बुद्ध ने यहां जाना स्वीकार कर लिया और आदेशानुसार आराम बनाने की तेयारी होने लगी। उस दृश्य में बैलगाड़ी से कार्षापण जमीन पर बिछाये दिख पड़ते हैं। जेत नामक राजकुमार ने श्रेष्ठी से उतना द्रव्य मूल्य में मांगा, जितना उस भू–भाग पर फैलाया जा सके। सिक्का फैलाकर कुटिया बनाई गई तथा उसे श्रेष्ठी ने दान कर दिया। यही दृश्य जेतवन विहार के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान ने वहां कई वर्षावास व्यतीत किए तथा बुद्ध धम्र का प्रचार किया। उस ब्राह्मण धर्म के गढ़ को नष्ट करना एवं धर्म का प्रसार चमत्कार समझा गया है। श्रावस्ती की खुदाई से स्तूप

तथा विहार प्रकाश में आये। कुटिया को ही बुद्ध का प्रतीक समझते हैं। तीसरा चमत्कार महाप्रदर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। एक ही क्षण सहस्रों बुद्ध का प्रकटीकरण विलक्षण कार्य था। वैशाली में वृज्जि लोगों के आग्रह पर भगवान ने यह चमत्कार दिखाया। बोधगया की वेदिका पर महाप्रदर्शन प्रदर्शित है। महायान मत में इसको दीवाल पर हजारों बुद्ध–प्रतिमा द्वारा दिखलाया गया हैं। सारनाथ, इलौरा में प्रतिमा द्वारा अजंता में चित्रों द्वारा इस चमत्कार को दर्शाया गया है। चौथा अद्‌भुत कार्य अवतरण से व्यक्त किया गया है। उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद जिले में संकिसा नामक स्थान से यह घटना संबंधित है। कहा जाता है कि भगवान् अपनी माता माया देवी को तुषित नामक स्वर्ग में धर्म की शिक्षा देने गये थे। वहां से वे संकिसा में अवतरित हुए। इस चमत्कार को भरहुत–वेदिका तथा सांची–तोरण पर खोदा गया है। भरहुत–वेदिका पर सीढ़ी बनायी गई है, जिसके ऊपरी भाग तथा सबसे निचले भाग पर पदचिन्ह खुदा है। ऊपरी पदचिन्ह उनके स्वर्ग में रहने की घटना का द्योतक है तथा निचला बुद्ध के स्वर्ग से अवतरण का प्रतीक था। अतएव शिक्षा सांची–तोरण पर सीढ़ी के ऊपर तथा नीचे वृक्ष खुदा है। ऊपर देवतागण तथा नीचे मनुष्य की आकृतियां बनी है। यानी ऊपरी वृक्ष स्वर्ग में उपदेश का द्योतक है तथा निचले अवतरण को बतलाता है। इस प्रकार चार गौड़ चमत्कार प्रदर्शित हैं।

अन्य प्रतीक –

इनके अतिरिक्त भगवान के वज्रासन, बुद्ध पद–चिन्ह, चंक्रम पथ और चूडा की पूजा का प्रदर्शन भी वेदिकाओं पर दिख पड़ता है। बोधगया में पीपल–वृक्ष के नीचे गौतम को ज्ञान हुआ था। वह जिस प्रस्तर के आसन पर बैठ कर तपस्या करते रहे, उसे वज्रासन का नाम दिया गया है। आज भी बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे वज्रासन का स्थान पूजित होता है। वेदिकाओं या तोरण पर एक फीट लंबी, दा इंच चौड़ी प्रस्तर दिख पड़ता है। उसे ही वज्रासन कहते हैं। बुद्ध के पदचिन्ह भरहुत–वेदिका पर प्रदर्शित हैं, जिसमें संकिला में अवतरण का दृश्य प्रदर्शित है। अमरावती के गोलाकार फलक पर सुंदर पद–चिन्ह खुदे हैं। मध्य भाग में चक्र तथा त्रिरत्न की आकृतियां खुदी हैं। पद–चिन्ह महापुरुष का लक्षण माना गया है। अतएव वह बुद्ध का प्रतीक है। दोनों ओर देवतागण प्रणाम करते दिख पड़ते हैं।

तीसरा प्रतीक चंक्रम पथ कहा जाता है। सांची–तोरण पर जल के मध्य दो फीट लंबा अनलंकृत प्रस्तर दृष्टिगोचर होता है। उसे चंक्रमपथ कहते हैं। इसका संबंध बोधगया से है। बुद्धत्वप्राप्ति के पश्चात् बुद्ध यह सोचने लगे कि उपदेश किसे दिये जाय। इस विचार में कई दिन व्यतीत हो गये। वह जिस स्थान पर टहला करते और विचार में मग्न रहते, उसे बोधिवृक्ष के समीप ही स्थिर किया गया है।

अमरावती में बुद्ध के चूड़ा की पूजा का अतीव सुंदर प्रदर्शन मिलता है। वेदिका के गोलाकार फलक पर यह खुदा है। देवतागण बुद्ध के चूड़े को पात्र में रख कर ला रहे हैं। भरहुत की वेदिका पर भी चूड़ा पूजा का प्रदर्शन है। वर्णन आता है कि सिद्धार्थ गौतम ने तपस्या आरंभ करते समय बाल को काट दिया। वही छोटे बाल उष्णीस कहलाते हैं। हीनयान मत में उसी चूड़े को प्रतीक मान कर स्वर्ग में पूजित करते देवतागण प्रदर्शित हैं।

भरहुत में इसे बड़े ही विस्तृत ढंग से दिखलाया गया है। बुद्ध के चूड़े को देवतागणों ने उठा लिया, पृथ्वी पर गिरने नहीं दिया। स्वर्ग में ले जाकर उसे सुन्दर भवन में रखा, जिसे चैत चूड़ामणि कहा गया है। महल में चूड़ापात्र रखा है। देवतागण खड़े हैं। नीचे लेख अंकित है।– "सुदामा देव सभा भगवतो चूड़ा महो"। ऐसा प्रदर्शन अन्यत्र नहीं है।

जातक प्रदर्शन

बौद्ध साहित्य में जातक नामक कथा–साहित्य की भी प्रमुखता है। इसमें बुद्ध के पूर्व जन्म के पांच सौ पाचास कथाओं का संग्रह है। यह शब्द जात तथा कथा से अपनी सार्थकता व्यक्त करता है। हीनयान में भगवान् बुद्ध के जीवन–संबंधी विषयों का प्रदर्शन प्रतीकात्मक रूप में मिलता है। उसके अतिरिक्त वेष्टनियों तथा तोरणों पर जातक का भी प्रदर्शन हैं शुंगकालीन स्तूप की वेहिदकाओं पर इनका प्रदर्शन उपासकों को पूजा–निमित्त आकर्षित करता है। उस माहन् व्यक्ति के चमत्कार तथा लीलाओं को प्रसतरों पर खुदा देख उपासकों एवं दर्शकों के दिल में अपने–आप समादर की भावना आ जाती है। उनके उच्च चरित्र की घटनाओं को देखने से आकर्षित होना भी स्वाभाविक है। हीनयानी कलाकार अपने कार्य में सफलीभूत हुए। उनकी कृतियां आज भी सभी को आनन्दविभोर कर देती हैं। यही वेदिकाओं तथा तोरणों के प्रदर्शन का लक्ष्य था।

कथा साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है–

1. दूरे निदान – बुद्ध की दूरवर्ती घटनाओं, कथाओं का प्रदर्शन– उदाहरण के लिए सुमेध तपस्वी, दीपंकर, बेसंतर तथा स्वर्ग से अवतरण।
2. अवदूरे निदान– वे कथाएं, जो भगवान् की बुद्धत्वप्राप्ति तक की बातों से संबंधित हैं।
3. संतीके निदान– वे कथाएं जो मार विजय के पश्चात् कही गई।

जातक से उन घटनाओं का संबंध है, जो कल्पित ढंग से कही गई हैं। अतएव निदान तथा जातक प्रदर्शन मिला कर बुद्ध की सारी घटनाओं को उपासकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

बोधगया में अधिक कगिनकों का प्रदर्शन नहीं मिलता, जितना भरहुत–वेदिका पर दृष्टिगत होता है। सांची–तोरण के बंउेरियों पर भी कुछ जातक प्रदर्शित है। जातकों में निम्नलिखित समान रूप से भरहुत तथा सांची–तोरण पर दिखते हैं।

बेसंतर जातक

बेसंतर नामक जातक भरहुत–वेदिका पर सूक्ष्म रूप में प्रदर्शित है। विश्वंतर नामक राजकुमार हाथी का दान कर रहा है। सांची तोरण पर यह अत्यंत विसतृत रूप में दिखलाया गया है। यह कथानक दानी हरिश्चन्द्र की जीवन–घटनाओं से मिलता–जुलता है। विश्वंतर दान के कारण देश से बहिष्कृत कर दिया गया। उसे जंगलों में जाना पड़ा। पुत्रों तथा पत्नी को भी दान कर दिया। अंत में इंद्र आकर उसे आशीर्वाद देते हैं, दान की प्रशंसा करते हैं तथा उसे राज्य वापस मिल जाता है। पुनः वह शासन का अधिकारी बन जाता है। सत्य हरिश्चन्द्र की कहानी से इसमें अधिक समानता है।

कलाकार ने बेसंतर जातक के कथानक को सजीव बनाने का अथक परिश्रम किया है। कथा की प्रगति को राजकुमार विश्वंतर की आकृतियों से आंका जा सकता है, जिसे स्थान–स्थान पर दिखलाया गया है। इससे कथानक को चलायमान प्रदर्शित कर घटनाओं का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। एक स्थान पर राजा को न दिखा कर विभिन्न स्थानों पर खुदी आकृतियां यह प्रभावित करती हैं कि कथानक की प्रगति के साथ राजा भी गतिमान है। यह सजीवता का द्योतक है।

सांची के कला की यही विशेषता है कि कोई भी कथानक अचल या स्थिर नहीं हैं सभी में स्पंदन है तथा प्रधान पात्र चलायमान दिख पड़ता है। पश्चिमी तोरण की बंडेरियों पर यह कथानक प्रदर्शित है। इसमें राजकुमार रथ पर महल के फाटक से निकलता दिखलया गया है। कुछ दूरी तक रथ जाता है, किन्तु जंगल के समीप से लौट जाता है। दृश्य के ऊपरी भाग में रथ के घोड़े पहले से विपरीत दिशा में चल रहे हैं। बंउेरी की दूसरी ओर जंगल का दृश्य है। राजा के बालक तथा पत्नी पृथक हो गये हैं। पुनः राजा के समीप देवता खड़े हैं।

महाकपि जातक के प्रदर्शन भरहुत के गोलाकार फलक तथा सांची के पश्चिमी तोरण पर किया जाता है। जातकों में काशी के राजा ब्रह्मदत्त के नाम से अनेक कथानक मिलते है। महाकपि जातक भी ब्रह्मदत्त से ही संबद्ध है। काशीनरेशके

सम्मुख एक मल्लाह ने अत्यंत सुन्दर फल भेंटस्वरूप उपस्थित किया। रानी उस मीठे फल को चखकर स्तंभित हो गई और सोचा कि ऐसे फल खाने वाले जीव का मांसल ह्रदय कितना मीठा होगा। अतएव ब्रह्तदत्त से कह उसने ऐसे फल खाने वाले, जीव का ह्रदय लाने की आज्ञा दी। सैनिक नदी के सहारे उस स्थान पर पहुंचे, जहां वैसे फलों को बंदर खा रहे थें उन बंदों को पकड़ने की योजना का आभास बोधिसत्व को मिल गया। अतएव बंदरों को नदी पार जाने के लिए तथा सैनिकों के चंगुल से रक्षा निमित्त बोधिसत्व ने विशाल शरीर धारण किया। हाथ नदी के किनारे पेड़ पर तथा पैर दूसरे किनारे के वृक्ष पर सिति कर नदी पर पुल सा शरीर फैला दिया। अतः बंदरों को मारना असंभव हो गया। इसी कथानक को दोनों स्थानों पर दिखाया गया है। भरहुत का प्रदर्शन सूक्ष्म है। कपि के शरीर पर पुल बन चुका है। बंदर उस पर जा रहे हैं नीचे दो आदमी चादर फलयें हें, ताकि गिरते फल को एकत्रित कर सकें फलक के निचले भग में बोधिसत्व सैनिक सरदार को अहिंसा की शिक्षा दे रहे हैं।

सांची तोरण पर इस महाकपि को सुंदर रूप में दर्शाया गया है। इस जातक का प्रदर्शन उसी स्थान से आरंभ होता है जहां बंदर फल खा रहे हैं। पूर्वपीठिका के साथ महाकपि जातक को व्यक्त किया जाता है। सांची में फल को एकत्रित करने के लिए चादर फैलाया दिख नहीं पड़ता। कलाकार ने उसको प्रमुखता न दी। कपि के पुल रूपी शरीर को सांची में अधिक महत्व दिया गया है और अनेक बंदर दोनों किनारों पर गतिशील है। बनावट की सार्थकता उसकी खुदाई से व्यक्त हो जाती है। प्रायः जातक कथाओं का अंत अहिंसा की शिक्षा से ही किया गया है। यों तो समाज की बातें का भी दिग्दर्शन है, किन्तु ऐसी परिस्थिति में महाकपि ने अहिंसा की शिक्षा देकर कार्य को संपनन किया, ऐसी धारणा कथानक के अध्ययन से हो जाती है।

सांची के तोरणों पर गतिशील प्रदर्शनों में षड्दंत जातक की भी गणना होती है। षड्दंत कथानक का उल्लेख चीनी तथा सिंहाली साहित्य में मिलता है। उन कथानकों में कुछ अंतर अवश्य है, किन्तु मूलरूप में भेद नहीं है। सांची तोरण की बंडेरी पर मानसरोवर से अनेक हाथी पानी से बाहर आते दिखाये गये हैं। षड्दंत के

सिरे पर छत्र है। अतएव वही बोधिसत्व हैं, इसे पहचानने में विलंब नहीं हो सकता। षड्दंत पानी से बाहर आकर एक वृक्ष के नीचे खड़ा हो जाता है, जिसकी आड़ में व्याध धनुषवाण लिए खड़ा है। यहीं कलाकार ने कथानक का अंत कर दिया। हाथी का पानी से निकलना तथा चूमकर पेड़–तले खड़ा होना, कथानक के प्रवाह तथा सजीवता को व्यक्त करता है। विभिन्न दिशाओं में षड्दंत का प्रदर्शन कथानक को सप्राण बना देता है।

ऐतिहासिक प्रदर्शन

इन जातक कथानकों के अतिरिक्त अनेक जातक प्रदर्शित हैं, जिनके प्रदर्शन की चर्चा विभिन्न स्तूपों के अलंकरण के साथ की जायेगी। इनके सिवाय कुछ ऐतिहासिक विषयों का भी प्रदर्शन मिलता है। भरहुत वेदिका के दो सतम्भों को प्रसेनजीत तथा अजातशत्रु स्तम्भ का नाम दिया गया है। उस पश्चिमी तोरण के स्तम्भ पर यह दृश्य है। समानफल सूतं में यह वर्णित है कि पिता के मृत्यु पश्चात् अजातशत्रु बुद्ध के दर्शन हेतु गृद्धकूट पर्वत पर गया। थोड़ी ही सीमा में तीन दृश्य प्रदर्शित हैं। अजात की यात्रा, हाथी से नीचे उतरना तथा बुद्ध के आसन की पूजा। उसके साथ में जीवक भी हैं। बिचले भाग में बुद्ध पदचिन्ह द्वारा प्रकट हो रहे हैं। लेख है– अजातशत्रु भगवतो वंदते'। कोशल के राज प्रसेनजीत द्वारापूजा का प्रदर्शन दक्षिणी तोरण पर किया गया है– राजा प्रसेनजीत कोसलो'। उसका कारण यह है कि एक स्थान पर हाथी पर बैठा अजातशत्रु बुद्ध का दर्शन करने जा रहा है। दूसरे में प्रसेनजीत रथ पर सवार पूजा निमित्त महल से बाहर लिकल रहा है। दोनों ऐतिहासिक घटनाओं को विश्वसनीय मानने में आपत्ति नहीं है। सांची की बंउेरी पर अशोक का दृश्य खुदा है। अशोक विष्यरक्षिता के साथ हाथी से पृथ्वी पर उतर रहा है। वह रामग्राम के स्तूप–दर्शनार्थ वहां आया था। यह अशोक के निगाली स्तंभ लेख से भीविदित होता है कि सम्राट् ने कनकमुनि बुद्ध के स्तूप का संस्कार किया था।

देवानां पियेन पियदसिन लाजिन चोदसवसाभिसितेन बुंधस कोनाकमनस थपे दुतियं बढ़िते।

इस स्थान पर एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का वर्णन आवश्यक प्रतीत होता है जिसका प्रदर्शन केवल सांची के दक्षिण एवं पश्चिमी तोरण की बंडेरियों पर किया गया है। बुद्ध के जीवन के अंत उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के अंतर्गत कुशीनगर नामक स्थान पर हुआ था। उनके महापरिनिर्वाण की खबर पाकर कपिलवस्तु के शाक्य आ गये। कसिया के मल्ल लोग वहां मौजूद थे। कई राजवंशों में भगवान् के षरीर अवशेष के लिए विवाद खड़ा हो गया कि भगवान मेरे है। अतः अवशेष दोनों

में एक को मिलना चाहिए। अभी इस विवाद का अंत न हो सका था कि आठ व्यक्तियों में राख के लिए झगड़ा खड़ा हो गया । संधिस्वरूप राख को आठ बराबर भागों में विभक्त कर दिया गया और सभी अपना भाग लेकर चल पड़े। दोनों तोरणों के बडेरियों पर यही चित्र खुदा है। मध्य में महल बना है। उसी के चारों तरफ चतुरंगी सेना आयुधसहित युद्ध करती दिख रही है। धनुष से बाण छोड़े जा रहे हैं। उसी प्रसंग में ऊपरी भाग में आठ हाथियों के सिरे पर भस्मपात्र प्रदर्शित हैं, जिस पर छत्र पड़ता है यानी वह भस्म भगवान बुद्ध का है। तात्पर्य यह है कि संधिस्वरूप भस्म के आठ भाग पृथक–पृथक कलश में रख कर हाथियों द्वारा निर्दिष्ट स्थान को पहुंचाया जा रहा है। शुंगकालीन प्रतीकात्मक कला में सांची तोरण पर यह दृश्य विशेषता रखता है। ऐतिहासिक प्रदर्शन के अतिरिक्त कला की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें प्रत्येक सैनिक के चेहरे पर उत्सुकता है, चैतन्यता है तथा सशक्त रूप में कार्य मं जुटे हैं। धनुषवाण चलाना शरीर में रक्तसंचार का द्योतक है। जीवनशक्ति से सैनिक युद्ध में रत हैं। दक्षिण तथा पश्चिमी तोरण पर प्रदर्शनों को तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि संपूर्ण दृश्य एक कलाकार द्वारा खोदे नहीं गए थे। सैनिकों के चेहरे पर विश्लेषण दो विभिन्न विचारों को सम्मुख रखता है। कुछ पुरुषत्व भाव से भरे हैं तो कुद चेहरे से स्त्रियोचित भाव प्रकट होते हैं। इसी कारण कई कलाकारों की कृतियां मानने में आपत्ति नहीं की जा सकती।

वेदिका पर अधार्मिक अलंकरण

जिन धार्मिक भावनाओं को लेकर मौर्यकला पुष्ति हुई थी, वह कालांतर में उस रूप में फलवती न हो सकी। स्तूप की वेदिकाओं तथा तोरणों पर जो अलंकरण दिखते हैं उनका मुख्य उद्देश्य था, उपासकों को आकर्षित करना। दर्शकगण स्तूप की पूजा अपना लें। इस लक्ष्य की पूर्ति कई अंशों तक हुई भी, किन्तु शुंगकला सामाजिक भाव सहित सामने आई। लोगों ने सामाजिक उत्सव तथा समारोह को अपनाया, जिसे अशोक ने निषेध किया था और कलाकार उसे वेदिका या तोरण के स्तम्भों पर प्रदर्शित करने लगे। इस प्रसंग में भरहुत–वेदिका का नाम प्रथम लिया जाता है। उसके प्रदर्शनों के नीचे लेख अंकित हैं। अतएव उनका एकीकरण या प्रत्यक्ष ज्ञान सरल हो गया है। स्तंभो पर नृत्य का दृश्य है। जो अप्सराएं वर्तमान हैं, उनका निचली दो पंक्तियों में नामोल्लेख भी है। सुभद्रा, सुदर्शना, मिश्रकेसी, अलंबुशा आदि नाम अंकित हैं। यह कहना यथार्थ होगा कि बुद्धधर्म से इनका कोई संबंध न था। नृत्य का समावेश बौद्धमत में कदापि नहीं हो सकता। अतः अप्सराओं का नृत्य बौद्धधर्म के अधार्मिक विषय का प्रतिपादन करता है। इसका मुख्य कारण यह था कि अशोक के बाद ब्राह्मण मत का पुनरूत्थान हुआ जिसका मुख्य पुष्यमित्र शुंग था। उसने अश्वमेघ के द्वारा वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की। अयोध्या लेख में उसे 'द्विरश्वमेघ याजिनः' कहा गया है तथा दूसरी सदी के महाभाष्कर पतंजलि ने भी 'इह पुष्यमित्रः याजयामः' लिखकर वैदिक धर्म के प्रचार की पुष्टि की। शुंगकालीन कला में वैदिक विषयों का समावेश समीचीन था। ऋग्वेद में तथा वाजसनेयी संहिता में मेनका तथा उर्वशी नामक अप्सराओं के नाम लिखते है। अतएव, भरहुत का प्रदर्शन वैदिक परम्परा का द्योतक है। स्तूप की वेदिका एवं तोरण स्तंभों पर यक्ष तथा यक्षिणी की आकृतियां खुदी हैं। समसत भारत में इनकी आकृति सुन्दर रीति से प्रदर्शित की गई है। यक्ष अर्द्ध देवी–देवता माने गये हैं जो ग्रामीण समाज में पूजित होते थे। संभव है, भय के कारण उनकी पूजा प्रचलित हो गई। यह स्पष्ट है कि यक्ष दिशाओं के रक्षक थे। इसी कारण तोरण के स्तंभों पर उन्हें स्थान दिया गया था। बौद्ध साहित्य में यख के राजा कुबेर का उललेख मिलता है। बौद्ध कला में भी कुबेर को स्थानं दिया। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कुबेर यक्षों

का राजा कहा गया है। इस प्रकार सांची के तोरण तथा अमरावती के वेदिका पर स्थान–स्थान पर यक्ष की आकृतियां खुदी हैं।

सामाजिक विषयों का प्रदर्शन

बुद्धधर्म से संबंद्ध अलंकरण के विषय में चर्चा की जा चुकी है। हीनयान कलाकार दर्शकों को आकर्षित करते रहे। समय–समय तत्कालीन विषयों का प्रदर्शन भी समीचीन माना जाता है। शुंगकालीन बौद्धकला मौर्य–युग के विचारधारा के अभावात्मक रूप को प्रदर्शित करती है। इसमें सामाजिक विषयों की खुदाई भी समाविष्ट की गई। शहर में महलों का दृश्य, जंगल के वातावरण का प्रदर्शन तथा मानव की भावभंगिमा एवं वस्त्राभुषण को भी कलाकारों ने कुशलतापूर्वक अंकित किया है। राजा तथा साधारण लोगों का वस्त्र सदा एक सा था। धोती, चादर एवं पगड़ी सर्वत्र दिखते हैं। परन्तु राजकीय वस्त्रों में सोना या कीमती रत्नों का उपयोग किया गया था। उसे जरी का काम कहा जा सकता है।

भरहुत, सांची या अमरावती के प्रदर्शनों में राजा या सेष्ठी के सिरे पर मूल्यवान पगड़ी दिखती है। भरहुत में एक स्थान पर ऐसा ही वस्त्र धारण किये एक पुरुष की आकृति है, जिसे 'कुपिरो यखो' यानि कुबेर, राजा आकृति के नीचे अंकित है। मायादेवी के सपना नामक प्रदर्शन मं स्त्रियां भी धोती–चादर पहले दिखती हैं। अप्सराओं के सिरे पर पतला चादर भी दृष्टिगोचर होती है। आभूषणों में ललाटिका, कुंडल, झुमक, हार, कंठाभूषण महामाला पंचलरी, भुजदंड, करधनी, पायल तथा अंगूठियां आदि सभी नर्तकी या नारियों के शरीर पर दिखलाया गया है। सांची–तोरण पर भी एक स्थान पर ओखली में कूटते हुए स्त्री की आकृति बनाई गई है। इस प्रकार धार्मिक वातावरण में ऐसे प्रदर्शनों की आवश्यकता पर आपत्ति की जा सकती है।

नाग तथा यक्ष–

भारतीय कला में नाग का समावेश एक गूढ प्रश्न है, जिसका समुचित उत्तर कठिन है। नाग–पूजा जनजातियों से संबंधित समझा जाता है। उसी परंपरा को आर्य लोगों ने अपनाया जिसकी अभिव्यक्ति वर्तमान नाग–पूजा से हो जाती है। नाग की भयंकरता को जानकर ही कृष्ण ने नाग का हनन किया था, परन्तु जैन तथा

बौद्धधर्म में नाग की सौम्य अवस्था को अपनाया गया जो भक्षक न होकर रक्षक बन गया। जैनियों ने पार्श्वनाथ के सिरे पर नाग की आकृति खोदकर सर्प के महत्व को बढ़ा दिया। नाग–छत्र पार्श्वनाथ प्रतिमा का आवश्यक अंग माना जाता है। बुद्धकाल में नाग को अत्यधिक प्रमुखता दी गई। नाग का तीन स्वरूप बौद्ध कलाकारों ने उपस्थित किया।

1. जंतु के रूप में
2. मिश्रित रूप
3. मानव का रूप

बोधगया वेदिका पर मुचलिंद नामक नाग बुद्ध की रक्षा करते प्रदर्शित है। आसन को फन से ढके है। भरहुत वेदिका पर नाग के तीनों स्वरूप दिखते हैं। जल में इलापट्रा नाग को सर्प के रूप में दिखलाया गया है। जिसे भगवान ने दीक्षा दी। उस जल के भाग में थोड़ी दूर पर मिश्रित रूप है। निचला भाग सर्प का तथा ऊपरी भाग को मनुष्य को अर्द्धशरीर का रूप दिया गया है। तत्पश्चात वही इलापट्रा राजा–रानी का रूप धारण कर वृक्ष/बुद्ध की पूजा कर रहे हैं। उस फलक के नीचे अंकित लेख में नाग का नामोल्लेख किया गया है– ''इरापटो नाग राज भगवतो बंदते'' इतना ही नहीं, नाग राजा को चक्रवर्ती नरेश के समान स्थान दिया गया और भरहुत के दक्षिणी तोरण स्तम्भ पर नागराज दिग्पाल के रूप में खड़ा है। लेख है– 'चकवको नागराजा'। नागराज चक्रवाक यानी इलाप्ट्रा के सिवाय चक्रवाल नामक नागराज भी भरहुत कलाविदों को ज्ञात था।

नाग–प्रदर्शन के अतिरिक्त यक्ष की आकृतियां सभी वेदिका स्तम्भों तथा तोरण स्तम्भों पर खुदी हैं। शुंगकाल में बौद्ध कलाकारों ने प्राचीन परम्परा को स्थायी रखा। ऋग्वेद में यक्ष को आश्चर्यजनक या रहस्यमय जीव कहा गया है। यक्ष–पूजा के लिए विशिष्ट स्थान निश्चित किया गया था। यक्ष को सुंदर वेषधारी कहा गया है। साहित्य में यक्ष–यक्षिणी सौन्दर्य के लिए उल्लिखित हैं। यक्ष की ब्रह्म से तुलना की गई और यख सदन ब्रह्मपुर के नाम से चर्चित है। संभवतः सुंदरता के लिए प्रसिद्ध यक्ष–यक्षिणी थे बौद्ध कलाविदों ने भरहुत, सांची, अमरावती या मथुरा के

वेदिका–स्तम्भों एवं तोरण– स्तम्भों पर स्थान दिया था। भारतीय कला में मौर्य–युग से पूर्व यक्ष–यक्षिणी की प्रतिमाएं उपलब्ध हुई हैं। बड़ोदा, पटना, विदिसा से यक्ष प्रतिमाएं प्रकाश में आई हैं। उनकी बनावट अनुपात रहित है। सौंदर्य के नमूने नहीं माने जा सकते । वैदिक साहित्य में कथित यक्ष तथा पूर्वमौर्य युगी यख–प्रतिमा में असमानता है। मध्य यक्ष प्रतिमा देषज है उसी को ध्यान में रखकर अशोक ने अपनी कला को शिष्ट बनाया। देशज कला का अभाव मध्यभारत के स्तूपों पर भी पड़ा, इस कारण भरहुत स्तंभ या सांची तोरण स्तंभ पर यक्ष–यक्षिणी की प्रतिमाएं खोदी गईं। विशाल शरीर, मांसल देह तथा अनुपात में असमानता इनकी विशेषता है। इस पर कलाकार सुधार करते गये और बुद्ध या महावीर की मूर्तियां भी यख के अनुकरण पर तैयार की गईं। मध्य भारत की देशज कला का प्रभाव अमरावती कला पर भी पड़ा। इसीलिए अमरावती यक्षिणी वेदिका स्तम्भ पर अथवा उष्णीस की लता के मोड़ यानी अंतराल में यक्ष की आकृतियां खुदी हैं।

शुंगकालीन प्रधान स्तूप

यद्यपि अशोक ने चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण किया था, परन्तु उनके अधिकतर भग्नावशेष ही प्राप्त हुए हैं। मौर्य–युग के बाद स्तूप–निर्माण की वह प्रगति न रही। जो स्तूप वर्तमान थे, उनको स्थायी रूप देने तथा आकर्षक बनाने की ओर शासकों या उपासकों का ध्यान गया। यही कारण था कि शुंगकाल में निर्मित स्तूपों पर प्रसतर का आच्छादन लगाया गया तथा काष्ठ की वेष्टनी को प्रसतर से प्रतिस्थापित किया गया। शुंगकालीन प्रधान स्तूप में निम्नलिखित की गणना होती है–

1. भरहुत
2. बोधगया
3. सांची
4. अमरावती

भरहुत

भरहुत नामक ग्राम प्रयाग से 120 मील दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित था। इलाहाबाद बंबई रेलवे से सतना नामक स्टेशन से नौ मील दक्षिण की ओर कनिंघम् ने सन् 1873 ई0 की अपनी यात्रा में भरहुत का निरीक्षण किया था। उस भूभाग में स्तूप के अवशेष ही मिल सके। स्तूप का संपूर्ण आकार समाप्त हो गया था। उनके अनुसार वेदिका का व्यास 88 फीट 4 इंच था और प्रयत्न करने पर स्तूप के चबूतरे का व्यास भी माप लिया, जो 67 फीट 8 इंच के बराबर था। उनका कथन है कि स्तूप की ईंटे 12×12× 3.5 इंच क्षेत्रफल में थीं। ऐसी ईंट से ही वर्तमान भरहुत के भवन बनाये गये हैं। भरहुत–स्तूप की चारों दिशाओं में चार तोरण थे तथा अस्ती वेदिका स्तंभों से घिरा था। इसके प्रस्तर लाल रंग के हैं जिसे विन्ध्या पर्वत के कैमूर श्रेणी से प्राप्त किया गया था। उत्तरी भारत की अन्य वेदिकाएं चुनार प्रस्तर की सफेद रंग की हैं। भरहुत वेदिका गोलाकार है। कुछ भाग प्रवेष द्वार को ढके हैं। भरहुत स्तूप के तोरण चौकोर प्रस्तर के बने हैं। जिनके ऊपरी शीर्ष में घंटीनुमा बनावट तथा चौकी भी दिखती है। उस चौकी पर दो पक्षयुक्त सिंह अथवा वृषभ की आकृतियां बनी हैं। तोरण की बंडेरियों के छोप पर पूंछ सहित मुख खुले मकर की आकृतियां उत्कीर्ण है। बंडेरी के मध्यम भाग में धर्म चक्र बना है। कनिंघम द्वारा संग्रहीत स्तूप के भाग कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। भरहुत प्राचीन नगर था जहां स्तूप बनाया गया था। समीप के भू भाग में सतूप के ईंटे सर्वत्र पायी जाती है, जिससे प्रकंट होता है कि प्राचीन स्तूप की ईंटों को उठाकर स्थानीय जनता ने अपना भवन तैयार किया। वेदिका के खुदे प्रस्तर भी उस भूमि पर यत्र–तत्र अभी पाए जाते हैं। इस स्थान के भौगोलिक महत्व के विषय में अधिक कुद कहा नहीं जा सकता, किन्तु इस स्थान की प्रमुखता के कारण ही स्तूप भरहुत ग्राम में निर्मित किया गया हो।

इस ग्राम की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार है। मेहर नदी की घाटी के उततरी सिरे पर यह स्थित था, जहां पर उज्जैन–विदिसा से मार्ग पाटलीपुत्र की ओर मुड़ता था और कौशांबी तथा श्रावस्ती की दिशा में भी राजमार्ग जाता था। संभवतः इसकी

स्थानीय स्थिति के महत्व को समझ कर स्तूप का निर्माण हुआ, जिससे यात्री गण का ध्यान आकृष्ट हो सके। स्तूप की उपयोगिता ही पूजा के निमत्त रही, अतएव भरहुत–स्तूप की स्थिति महत्वपूर्ण थी।

कनिंघम ने भरहुत–वेदिका–संबंधी अंकित लेखों की वर्णमाला का आधार पर निष्कर्स निकाला है कि वेदिका का निर्माण भारतीय कलाकारों ने किया था। किन्तु, वर्णमाला का आधार सर्वथा प्रामाणिक नहीं माना जा सकता कि भरहुत–तोरण की खुदाई विदेशी कलाकारों ने की। भरहुत–तोरण की ऊंचाई करीब दस फीट के बराबर है और शीर्षस्थ भाग को लेकर 12 फीट आठ इंच हो जाती है। भरहुत–वेदिका स्तंभ एक ही प्रसतर से निर्मित हैं। प्रायः सभी पर स्तम्भ दान का लेख प्राकृत में खुदा है–

थंभो दानम् (स्तम्भ का दान)

इन स्तम्भों में गोलाकार फलक बने हैं, जिनमें पुष्प, जानवर की आकृतियां या कथानक प्रदर्शित हैं। सब प्रदर्शन के नीचे लेख खुदा है। जिससे उनका एकीकरण हो जाता है। इन स्तम्भों पर यक्ष–यक्षिणी की भी आकृतियां उत्कीर्ण हैं। साधारणतया यक्ष या देवता तोरण के समीपस्थ स्तम्भ चित्र अंकित है। संभवतः प्रवेश द्वार की रक्षा निमित्त उन्हें विशिष्ट स्थान दिया गया था। यक्ष–यक्षिणी की मनुष्याकार आकृति प्रमुख स्थान पर स्थित है। पर, इनको सीमा में बांधा नहीं गया है। वृक्ष का तथा श्री मां देवता का रूपचित्र गोलाई में तैयार दिखता है। अतः इन्हें रेखाकार अवसथा के द्योतक मानते हैं। पश्चिमी तोरण पर प्रदर्शित रूपचित्रों को निश्चित योजना से तेयार किया गया है। इनकी बनावट में ढांचा का अभाव है। भरहुत के मनुष्य आकार के रूपचित्रों को देखने से प्रकट होता है कि कलाकार मानव–आकृति का अच्छा ज्ञान रखता था। बुद्ध के प्रधान प्रतीकों में धर्मचक्र तथा वृक्ष अनेक प्रकार से प्रदर्शित हैं। भगवतोधम चकं' लिख कर उस चक्र की महानता दिखलायी गई है। भरहुत वेदिका पर वृक्ष का प्रदर्शन अपनी निजी विशेषता रखता है। तथा अन्यत्र किसी बौद्ध कलात्मक नमूनों में दिख नहीं पड़ता। यह तो सत्य है

कि पूजा के विभिन्न प्रतीकों में वृक्ष का स्थान भी महत्वपूर्ण था। पूजा संबंधी तीन प्रकार के विषय निर्धारित किए गए हैं–

1. शारीरिक – बुद्ध की अस्थि, चूड़ा या नख।
2. उद्देशिक –प्रतिमा–या स्तूप, चक्र त्रिरत्न।
3. परिभोगिक – भिक्षापात्र, वस्त्र, आसन आदि तीसरी श्रेणी में वृक्ष को स्थान दिया गया है, क्योंकि उसी के नीचे बैठ कर ज्ञान प्राप्त हुआ था। अन्य परिभोगिक विषयों में वृक्ष की ही प्रधानता दिखती है। इसका कारण यह था कि बुद्ध के सात मानुषी स्वरूप माने गए हैं। बोधगया का पीपल–वृक्ष बोधि–वृक्ष कहालाया, जिसका संबंध सातवें बुद्ध से जोड़ा गया है। भरहुत–स्तंभों पर वृक्षों की प्रतिकृति उत्कीर्ण कर नीचे लेख भी अंकित है, जिससे मानुषी बुद्ध का एकीकरण किया गया है–
    1. विपस्वी–पाटललिवृक्ष
    2. सिकिन– पुंडरिका (सफेद कमल)
    3. विश्वभू– शाल वृक्ष
    4. क्रकुछंद– शिरिस वृक्ष
    5. कनकमुनि– उदुंवर वृक्ष
    6. काश्यप –न्यग्रोध या वट
    7. शाक्यमुनि– पीपल

वृक्ष के नीचे लेख खुदे हैं।

1. भगवतो विपसिनो बोधि
2. भगवतो सिकिन बोधि
3. भगवतो वेशभुवोबोधि सालो
4. भगवतो ककुसधस बोधि
5. भगवतो कोनिगमेनस बोधि
6. भगवतो कसपस बोधि
7. भगवतो शकमुनिनो बोधि

यद्यपि सभी नाम किसी–न–किसी वृक्ष के नीचे अंकित है, पर सभी बोधि वृक्ष नहीं माने जा सकते। तीसरे स्थान पर शाल वृक्ष का नाम है। पर अन्य वृक्षों के अवलोकन से विदित होता है कि कोई वट, आम्र, पाटभे, बांस का पौधा आदि के आकार माने जा सकते हैं। जो कुछ भी वृक्षों का वर्गीकरण हुआ, यह संतोष की बात है कि भरहुत के कलाकारों ने सभी कृतियों की जानकारी के लिए लेख अंकित किया।

भरहुत की दूसरी विशेषता जातक–प्रदर्शन तथा नामांकन की है। यहां सबसे अधिक जातक को प्रदर्शित किया गया। उनमें मिग, नाग, यवमझकीय, हंस, किन्नर, दशरथ, विधुर आदि–आदि प्रदर्शित हैं। लेख के कारण एकीकरण में सरलता हो जाती है। दशरथ जातक काशी के राज ब्रह्मदत्त को दशरथ माना गया है, क्योंकि उसकी कन्या का नाम सीता था। कथानक में राम, लक्ष्मण, भरत आदि का उल्लेख है। प्रायः सभी जातक प्रदर्शन का मूक उपदेश था– सात्विक जीवन तथा अहिंसा। ऐतिहासिक घटनाओं में माया देवी का सपना एवं जेतवन विहार का उल्लेख समीचीन होगा। इन प्रदर्शनों के नीचे भी स्पष्टतया उल्लेख है–

भगवतो रूकदंत तथा जेतवन अनाधपिंडिको देतु कोटि संथतेन कोटा।

जेतवन विहार के दान मिलने पर बुद्ध वर्षावास के लिए शीघ्र श्रावस्ती चले गए। इस प्रकार का प्रदर्शन भरहुत की निजी विशेषता है। प्रत्येक उत्कीर्ण दृश्य को नामांकन की क्या आवश्यकता थी, यह रहस्यपूर्ण प्रश्न है।

यदि इनका निदान ढूंढ जाय तो यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन जनता में इन विषयों की जानकारी न थी अथवा उनमें आात था। अतएव, भरहुत के कलाकारों ने उपासकों को प्रकाश में लाने के लिए या आकर्षित करने के निमित्त उत्कीर्ण दृश्य के नीचे लेख अंकित करवाया था। भारत के स्तूपों में भरहुत कला को हीनावस्था में पाते हैं। इसका मूल कारण यह है कि भरहुत के रूप–चित्रों के अंगों में गति का अीाव है या सभी सीमेंट से जुड़े प्रकट होते हैं। यदि मनुष्य का अंग सर्वदा सीधा दिख पड़े या उसमें मोड़ न हो, तो स्थिरता के कारण प्राकृतिक अंग नहीं समझे जा सकते । यक्षिणी की कटि तथा नितंब में अनुपात का अभाव है। तात्पर्य यह है कि

भरहुत कलाकार सापेक्ष महत्व की जानकारी न रखते थे। शरीर के पारस्परिक अनुपात में विभेद दिखते हैं। यह कला की हीनता का द्योतक है। भरहुत–स्तंभ पर चौकोर सीमा में उत्कीर्ण दृश्यों में गहराई का अनुभव नहीं हो पाता। यक्षिणी की प्रतिकृति सीमित क्षेत्र में न बनकर स्वतन्त्र रूप में वामन की पीठ पर तैयार की गई है। सभी लंबाई के अनुपात में उत्कीर्ण है। इनमें गहरा खोदकर भी चौड़ाई को ध्यान में रखा गया है, जिससे आकृति का बाहरी रेखाचित्र प्रकट होता है।

गोलाकार फलक –

भरहुत वेदिका का अनेक गोलाकार फलकों द्वारा अलंकृत करने की योजना है। उन फलकों में पुष्प, पशु, सेष्ठी या सिर या अन्य सामाजिक विषयों का प्रदर्शन है। कुल फलकों को देखते ही बनता है। उनमें हास्यास्पद बातें खुदी हैं। एक में बंदर डाक्टर के रूप में दिखता है। वह चिमटे से मनुष्य की दांत बाहर निकालते हुए उत्कीर्ण है। उस चिमटे को रस्सी में बांध कर हाथी के गले में फंसा दिया गया ताकि वह बलपूर्वक उस दांत को बाहर खींच सके। दूसरे फलक में बंदर हाथी को नचा रहे हैं। हाथी का पैर मोटे रस्से से बंधा है। उसकी पीठ पर अनेक बंदर बैठे है तथा अंकुश से खोद रहे हैं। पार्श्व में बंदरों का झुंड बाजे बजाता चला जा रहा है। भरहुत के कई प्रधान विषयों को मायादेवी का सपना, जेतवन–विहार, यवमझकीय जातक आदि दृश्य गोलाकार फलकों पर प्रदर्शित है तथा उनके नीचे लेख अंकित है। उष्णीस की खुदाई तथा लताओं का तालबद्ध प्रवाह भरहुत की विशेषता प्रकट करता है। इस प्रकार भरहुत के कलाकारों ने वेदिका या तोरण को अलंकृत करने की योजना तैयार की थी जिसे सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। इनमें अशोककालीन कला सिद्धांत का अभावात्मक प्रदर्शन है। इससे मध्य भारत की वन जातियों की संस्कृति का तत्व प्रकट होता है।

बोधगया

पाटलिपुत्र से दूर प्राचीन निरंजना नदी के किनारे पीपल वृक्ष के नीचे गौतम ने तपस्या की। कालांतर में वहीं उनको बुद्धत्व मिला। अतः वह स्थान बोधगया के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वृक्ष को बोधिवृक्ष पुकारने लगे। उसी वृक्ष के समीप बुद्ध का वज्रासन दिख पड़ता है जहां बैठकर तपस्या प्रारम्भ की थी। भरहुत के सदृश उत्तर मौर्यकाल में बोधकगया में जो वेदिका निर्मित हुई, वह वज्रासन एवं बोधिवृक्ष के चारों ओर थी, किन्तु पूर्णवर्मा नामक मगध नरेष ने वेदिका का विस्तार किया। ह्वेनसांग ने ऐसा ही विवरण दिया है। वर्तमान समय में बोधगया की वेदिका वृ1क्ष, वज्रासन तथा चक्रम पथ को घेरे हुए हैं। अनेक छोटे स्तूप इसकी परिधि के बाहर हैं। पूर्वी दिशा में तोरण भी दिख पड़ता है। किन्तु वेष्टनी का भाग उत्तर पश्चिम में शेष रह गया है। बोधगया की वेदिका अन्य वेदिकाओं से कुछ भिनन है। इसे भी हीनयान–युग में तैयार किया गया था, अतएव प्रतीकों तथा कथानकों का प्रदर्शन दिखता है। ईसापूर्व सदी में निर्मित वेदिकाओं की यही विशेषता है कि उनकी कला प्रतीकात्मक है। भरहुत से बोधगया की कला उच्चतर समझी जाती है। इसमें भी तत्कालीन सामाजिक बातों का प्रदश्रन है, परन्तु बोधगया के कलाकार खुदाई करते समय आवश्यक तथा अनावश्यक तत्वों में विभेद करते रहे। इस कारण आवश्यक ततवों के संग्रह से प्रदर्शन अपरिपूर्ण होता था। भरहुत की तरह उनकी कला बोझिल न थी। थोड़ी सीमा में आकृति को सुन्दर बना कर संक्षिप्तीकरण पर ध्यान देते थे। बोधगया के प्रदर्शन भार रहित तथा गोलाकार होकर सजीवतापूर्ण हैं। यही कारण है कि बोधगया को दूसरी सीढ़ी पर रखते हैं। यहां की आकृतियों की ग्रंथियों में गति का संचार देखते हैं। रूपचित्रों में गतिविधि की कल्पना तथा चित्र को आकर्षित करने वाले गुण विद्यमान हैं उनके अवलोकन से चित्त को प्रसन्नता होती है ओर किसी न किसी प्रकार का उपदेश मिलता है। लंबाई, चौड़ाई में तो चौकार स्थल खुदे हैं, उनमें गहराई का कार्य भी प्रारम्भिक दशा में दिख पड़ता है। सबसे प्रमुख बात यह है कि ब्राह्मण धर्म के प्रभाव से बोधगया की वेदिका अछूती न रह सकी। इसके स्तम्भ पर सूर्य के रथ की आकृति है। इंद्र बुद्ध के दर्शनार्थ उपस्थित हैं। ज्योतिषशास्त्र की बारह राशियों की कल्पित आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इससे

धार्मिक भावना के समन्वय का परिज्ञान हो जाता है। ऐतिहासिक घटनाओं में जेतवन विहार का प्रदर्शन सुंदर रीति से संपन्न है। वेदिका के गोलाकार फलकों पर ही राशियों के चित्र तथा पुष्प या श्रेष्ठी का सिर प्रदर्शित है। इन सभी बातों में बोधगया की वेष्टनी का शेषांश समानता रखता है। बोधगया की वेष्टनी का आलंबन–प्रस्तर चारों तरफ दिखता है। वर्तमान मंदिर भी वेष्टनी के भीतर खड़ा हैं यह किस समय निर्मित हुआ यह वास्तविक रूप से नहीं कहा जा सकता परनतु 12वीं सदी में वर्मा की सरकार द्वारा इसका जीर्णोद्धार हुआ था।

बोधिवृक्ष की दक्षिण दिशा में स्तूप के अवशेष हैं जिसे अशोक ने बनाया था। ह्वेनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि पूर्वी दिशा से मार की सेना ने बुद्ध पर आक्रमण किया था। सुजाता द्वारा तपस्वी गौतम को खीर देना निरंजना नदी पार कर वृक्ष के नीचे बैठना तथा मार की कन्या एवं सैनिकों द्वारा आक्रमण, सभी बोधि वृक्ष के समीप की घटनाएं हैं। किन्तु बोधगया का वेष्टनी पर इनका प्रदर्शन नहीं मिलता। सांची तोरण की बंडेरियों पर यह चित्र उत्कीर्ण है। स्तूप के बारह वेष्टनी की स्थिति बोधिवृक्ष के महत्व को बतलाती है। मार पर विजय कर ज्ञान–प्राप्त करना बोधगया की प्रमुख घटना थी, जिसका प्रदर्शन अज्ञात कारणवश छूट गया है।

बोधगया के मंदिर के समीप छोटे छोटे स्तूप बने हैं। कुछ चुनार तथा काले प्रस्तर में खुदे हैं। एक तरफ ऊँचे टीले पर अनिमिसलोचन स्तूप निर्मित है। कहा जाता है कि वहीं से बुद्ध ने बोधिवृक्ष को देखा था। बोधगया में स्तूप की प्रधानता नहीं है।

सांची स्तूप

सांची नामक स्थान विदिसा से 6 मील पर स्थित है, जहां पर्वत के ऊपर कई स्तूप निर्मित है। इस कारण इसे महावंश में चेतिय गिरि भी कहा गया है। चौथी सदी के लुप्त लेख में काकनाड महाविहार के नाम से उल्लेख पाया जाता है। इस स्थान पर स्तूप क्यों बनाया गया? इस स्थान का भगवान् बुद्ध के जीवन से काई संबंध न था। बौद्ध साहित्य से विदित होता है कि अशोक उज्जैन में राज्यपाल का कार्य करता रहा। उसके बाद भी वह विदिशा गया तथा वहां से सेष्ठी की पुत्री से विवाह कर लिया। संभवतः इस कारण उस स्थान का महत्व हो गया और अशोक ने स्तूप तथा स्तंभ का निर्माण किया था। अशोक के स्तंभ पर लेख खुदा है और चार सिंह का शीर्ष है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि भगवान् बुद्ध के इच्छानुसार सांची स्थान को उपयुक्त समझाा गया। पाटलीपुत्र के कौशाम्बी होकर तथा उज्जैन सांची होकर राजमार्ग भारतीय समुद्र के पश्चिमी बंदरगाह भरौच जाया करता था। मथुरा से भी उज्जैन के लिए विदिसा होकर जाना पड़ता है। इस तरह सांची का भूभाग चौराहा था जिसके महत्व को ध्यान में रखकर अशोक ने स्तूप निर्माण किया होगा। सांची की खुदाई से मुख्य स्तूप से भस्मकलश की प्राप्ति न हो सकी है। यानी भस्म से सांची के मुख्यस्तूप का कोई संबंध न था। अशोक ने इसे पूजा निमित्त तैयार किया और लेख भी खुदवाए। यह स्थान सदियों तक महत्वपूर्ण बना रहा। पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र की राजधानी विदिसा की गुप्त सम्राट द्वितीय चन्द्रगुपत से उज्जैन को अपनी राजधानी बनाया और पश्चिम भारत विजय के लिए विदिसा में उसकी सेना पड़ाव डाल चुकी थी। चन्द्रगुपत के दो लेख यही खुदे हैं। उदयगिरि गुहा को खुदवा कर गुप्त सम्राट ने सभी का ध्यान आकर्षित किया। गुहा में वहरा–विष्णु की प्रतिमा उत्कीर्ण है। इस प्रकार सांची का भूभाग सदा के लिए महत्वपूर्ण रहा। इसी को ध्यान में रखकर स्तूप का निर्माण हुआ होगा।

सांची में तीन स्तूप हैं। स्तूप न0 1 प्रधान स्तूप है। स्तूप न0 3 से सारिपुत्त तथा मौद्गल्यायन के भस्मपात्र उपलब्ध हुए हैं। स्तूप न0 2 की निजी विशेषता नहीं है। इसमें अशोक के धर्म दूतों के अवशेष मिले हैं। भस्मपात्र पर लेख अंकित है। तोरण

का अीाव है। स्तूप न0 1 के समीप अशोक के स्तंभ पर लेख खुदा है, जिसमें विहार में विभेद पैदा करने वाले भिक्षु–भिक्षुणियों को दंड का विधान है। पुरातत्व के विद्वान स्तम्भ तथा न0 1 के आधार को समतल में देखा है। अतएव दोनों समकालीन है। ईसापूर्व 300 वर्ष में निर्मित हुए। प्रारम्भ में सूखी कच्ची ईंट का अंड बनाया गया था। शुंग काल में इस अर्द्धवृत्ताकार स्मारक को प्रस्तर से आच्छादित किया गया। 70 फीट व्यास में तथा 35 फीट ऊँचा स्तूप है। इसके अधोभाग तल से 6 फीट की दूरी पर काष्ठ की वेष्टनी बनाई गई थी जिसे कालांतर में चुनार प्रस्तर से प्रतिस्थापित किया गया।

सांची की वेदिका के प्रत्येक भाग में लेख खुदे है। ये दानकर्ताओं के नाम हैं। जिसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि धार्मिक जनता के दान से वेष्टनी क्रमशः बनी। एक व्यक्ति विशेष ने इसमें हाथ न बटाया। सांची की वेदिका चिकने एवं सादे प्रस्तर से बने हैं, जिनके चार भाग हैं। जैसा भरहुत में पाया जाता है। एक सांची –वेदिका ही अनलंकृत है। अन्यथा भारत में सर्वत्र स्तूप की वेदिकाएं भली–भांति कलात्मक रूप में खुदी है। जैसा कहा गया है कि उनका एकमात्र उपयोग था, उपासकों तथा दर्शकों को अलंकारिक साधनों से आकर्षित करना। सांची वेदिका की सादगी के कारण कलाकारों ने स्तूप के वायुमंउल को तोरणों द्वारा अधिक आकर्षक बनाया। चुनार सफेद प्रसतर के तोरण–वेदिका के बाद जोड़े गये। इनकी स्थिति तथा बनावट देखने से सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

सांची के चारों तोरण क्रम से तैयार हुए थे। दक्षिण, उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम तोरण क्रमशः निर्मित हुए। तोरण के कारण सांची की बनावट अत्यंत सौन्दर्यमय हो जाती है। तोरण में चौकोर स्तम्भ हैं। उनके सिर पर जानवरों की आकृतियां खुदी हें उन पर प्रस्तर की एक शहतीर रखी है। प्रत्येक शहतीर के अंतिम छोर के समीप स्तम्भ की सीध में प्रस्तर के चौकोर मिथ्या शीर्ष बने हैं, जिनसे दो बंडेरियों में अंतर हो जाता है। इस तरह तीन बंडेरियों का तोरण है। तोरण के सतम्भ को कई चौकोर भागों में बांटा गया है, जिसमें वृक्ष, चक्र या स्तूप–पूजा का दृश्य दिखता है। भगवान के प्रतीक विश्ववंद्य है। वे सभी जलचर, नभचर, मनुष्य, देवतागण आदि द्वारा पूजित प्रदर्शित हैं इन्हें चरण–चित्र का नाम दिया गया है। कागज को गोल

करते समय तथा उसे खोलते समय चित्र सामने आते हैं। उसी रूप में स्तम्भ के प्रस्तर को भी चीरक समझ कर चरणचित्र कहना यथार्थ होगा। मिथ्या स्तंभ शीर्ष पर भगवान् के जन्म के अनेक प्रतीक प्रदर्शित किये गये हैं। बंडेरियों पर जातक के कथानक या जीवन–घटनाएं अथवा ऐतिहासिक विषयों का प्रदर्शन है जिसके कारण बंडेरियों पर अन्य प्रधान प्रतीक कम उत्कीर्ण हैं। षड्दंत जातक, विश्वंतर, मार–विजय, धातु के निमित्त विभिन्न राजवंशों के मध्य युद्ध आदि विषयों को गहराई तथा गंभीरतापूर्वक एवं समसत कलात्मक तत्वों को ध्यान में रखकर कलाकारों ने उत्कीर्ण किया। दक्षिण तोरण के तीसरी बंडेरी पर स्तूप तथा वृक्ष प्रत्यवर्ती रूप में रखे हैं, जिनकी संख्या सात है। अतएव, उन संख्या के कारण सभी सात मानुषी बुद्ध के प्रतीक समझे जाते हैं जैसा भरहुत में वृक्षों के नामकरण द्वारा बतलाया गया है। सांची में प्रदर्शनों का नामांकन नहीं मिलता। सर्वोपरि बंउेरी पर धर्मचक्र या त्रिरत्न के रूपचित्र खुदे हैं। उत्तरी तोरण के तीन शहतीरों पर विश्वन्तर जातक, मारविजय, षड्दन्त जातक उत्कीर्ण हैं। शहतीरों के दोनों छोर चक्रनुमा बने हैं तथा उनके ऊपरी भाग में पंखयुक्त सिंह की मूर्ति बनी है। प्रत्येक शहतीय को उचित स्थान पर रखने के लिए सालमंजिका की पूरी आकृतियां बंडेरियों के छोर पर दिखती है।

यदि तोरण के प्रदर्शन को देखा जाय, तो पता चलता है कि–

1. स्तम्भ पर चरणचित्रों में जातक।
2. अयथार्थ शीर्ष में जन्म के दृश्य।
3. बंडेरियों पर ऐसे कथानक खुदे हैं, जिनमें प्रवाह हैं, गतिमान होने के कारण जीवित मालूम पड़ते हैं।
4. रिक्त स्थानों में जानवर, हाथी, सवार, सालभंजिका तथा वृक्ष देवता के रूपचित्र योजनापूर्वक उत्कीर्ण है।

यद्यपि मनुष्य की प्रतिमा का शुभारंभ सांची के कलाकारों ने किया था, पर यह महायान का प्रभाव नहीं कहा जा सकता।

सांची–तोरण पर जितना भी प्रदर्शन है, सभी का संबंध हीनयान मत से है। यद्यपि भगवान बुद्ध विश्ववंद्य थे, सभी प्रतीकों का पूजन होता था। परन्तु कलाकार सौन्दर्य भावना से परे न थे। इसलिए सुंदरता के साथ प्रस्तर की खुदाई की गई थी। बुद्ध की प्रतिमा का अभाव है।

जीवन–घटनाओं में –

1. जन्म, माया का सपना महाभिनिष्क्रमण का प्रदर्शन अतीव सौन्दर्यपूर्ण है। कपिलवसतु नगरी से घोड़े का निकलना महाभिनिष्क्रमण का द्योतक है।
2. निरंजना नदी के किनारे सुजाता द्वारा भोजन का अर्पण तथा नदी पार कर पीपल वृक्ष के नीचे तपस्या।
3. मार विजय का विस्तृत दृश्य।
4. वज्रासन
5. चूड़ा का पूजन आदि विषयों का प्रदर्शन है। इनके साथ सभी आठों रहस्यपूर्ण घटनाओं को यथास्थान उत्कीर्ण किया गया है।

   जन्म, ज्ञान, उपदेश, परिनिर्वाण, नालहस्तिदमन, जेतवन, महाप्रदर्शन, स्वर्ग से अवतरण

सांची तोरण की कलात्मक विशेषता का गंभीर अध्ययन विशेषतया निम्न बातों पर प्रकाश डालता है–

1. परिदृश्य अथवा सापेक्ष महत्व
2. अनुपात तथा परिमाण
3. मनुष्याकृति का शुभारंभ
4. वनस्पतीय परिकल्पना की पराकाष्ठा
5. मालवा शैली का प्रभाव

1. परिदृश्य अथवा सापेक्ष महत्व –

सापेक्ष महत्व की जानकारी सांची के कलाकारों को पूर्व से ही थी, यह कहना कठिन है। शुंगकाल में भरहुत तथा बोधगया में काल तथा देश का

परिज्ञान था। यह परिदृश्य सांची में आंशिक रूप में विद्यमान है। प्रस्तर को यथार्थ रूप में खोद कर देश तथा काल को संकेत नहीं करते या उन लक्षणों को भ्रमपूर्ण स्थिति में व्यक्त करते थे। गहराई या दूरी व्यक्त करने के लिए प्रस्तर को गहरा काटने की प्रक्रिया नहीं अपनाई गई, किन्तु एक ही धरातल में विभिन्न पंक्तियां दिखला कर सापेक्ष महत्व दिखलाया गया है। वृक्ष की पूजा करते समय अनेक देवतागण बैठे दिखते हैं, परन्तु दो व्यक्तियों के सिरों के मध्य रिक्त भाग में एक छोटे आकार में मनुष्य का सिर उत्कीर्ण किया है। इसी प्रकार रिक्त स्थानों में क्रमशः छोटे आकार के सिर की योजना से कलाकार बोधिवृक्ष के चारों ओर बैठे व्यक्तियों को पंक्तियों में विभक्त कर देता था। यद्यपि सभी बातें भ्रमात्मक थीं। कलाकार समझबूझकर दर्शकों को भ्रम में रखना चाहता था। इससे प्रथम पंक्ति से दूसरी पंक्ति में बैठे मनुष्यों को दूरी व्यक्त हो जाती है।

समीप का बड़ा चेहरा– प्रथम पंक्ति,

उससे छोटा – द्वितीय पंक्ति

उससे भी छोटा– तृतीय पंक्ति।

प्रथम पंक्ति दर्शक के समीप, दूसरी कुछ दूर तथा तीसरी पंक्ति पर्याप्त दूर हो जाती है। समीप की पंक्ति वाले व्यक्ति की पीठ दर्शकों के सामने रहती तथा उसी धरातल में प्रदर्शित ऊपरी भाग में व्यक्ति का चेहरा दर्शकों को दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार एक धरातल में कई पंक्तिबद्ध मनुष्यों का प्रदर्शन सांची की निजी विशेषता है। दर्शक में दूरी तथा समय का ज्ञान बोधिवृक्ष के पूजन से होता है। मनुष्य आकार के छोटा या बड़ा होने से दूरी का परिज्ञान होता है। यद्यपि कलाकार भ्रमवश दूरी का बोध कराता है, किन्तु सापेक्ष महत्व के सभी गुण विद्यमान नहीं है। सांची के तोरण पर बुद्ध के स्वर्ग से अवतरण का प्रदर्शन दिखता है। इसमें स्वर्ग स्थित देवतागण की आकृतियां बड़ी हैं तथा सीढ़ी के नीचे संसार में स्थित मानव छोटे आकार के दिखाये गये हैं। मानव तथा दैवी शक्तियों में आकार द्वारा विभेद किया है। समीप में स्थित मनुष्य का बड़ा आकार होना चाहिए, परंतु पूजन के प्रदर्शन से अवतरण का प्रदर्शन सर्वथा विपरीत है। सांची के प्रदर्शनों में इस संबंध में

कलाविद् की सीमित जानकारी प्रकट होती है। वैज्ञानिक ढंग से उस विषय का अध्ययन नहीं दिखता है। इस कारण सापेक्ष महत्व का वास्तविक ज्ञान अविदित था।

देश के अतिरिक्त काल के प्रदर्शन में सांची के कलाकार कुछ श्रेणी तक दक्षता रखते थे। उस दिशा में कथानक का प्रदर्शन एवं उसकी प्रगति या गतिशीलता समुचित रूप से दिखलाई गई है। मुख्य पात्र को स्थान–स्थान पर दिखा कर कथानक के प्रभाव का परिज्ञान कराया गया है। विश्वंतर जातक, षड्दंत जातक, महाभिनिष्क्रमण में क्रमशः राजा की विभिन्न आकृतियां, हाथी का अनेक रूपचित्र तथा घोड़े को एक दिशा में दिख कर विपरीत दिशा में दिखाना कथानक के वर्तमानता को प्रकअ करता है। इस कार्य में पात्र की भावभंगिमा, शरीर को मोड़ तथा रूपचित्र में कोण का प्रदर्शन उसके शरीर समीप गहरा खोद कर कलाकारों ने सफलता पाई है।

2. अनुपात तथा परिमाण–

सांची तोरणकला की विशेषता है कि उत्कीण प्रदर्शनों में अनुपात का समावेश किया गया है। दक्षिणी तोरण के प्रदर्शनों का परीक्षण यह प्रकट करता है कि प्रत्येक आकार को ध्यान में रखकर सजीव बनाने में सफल प्रयत्न किया गया है। अनुपात के कारण पात्र, पुष्प, हाथियों का आकार भी यथेष्ट ढंग से उत्कीर्ण है। दक्षिण तोरण की बंडेरियों पर भस्म के लिए युद्ध का प्रदर्शन सप्राण प्रतीत होता है। यही सांची के कलाकार के रचनात्मक प्रतिभा को व्यक्त करता है। अलंकरण, तालबद्ध बनावट तथा विभिन्न दिशाओं में पशुओं की गति का प्रदर्शन देखते बनता है। इन्हीं कारणों से सांची की कला सर्वोत्तम मानी गई है।

परिमाण के संगंध में भी कलाकारों ने अपनी कुशलता दिखाई है। सांची में परिमाण की चरम सीमा मिलती है। गहराई की वास्तविकता की ओर पूरा ध्यान न देकर कलाकारों ने एक ही धरातल पर सब कुछ दिखलाया है। यदि प्रस्तर काट कर आकृतियों को गहराई में दिखाया जाय, तो एक के

पीछे दूसरी आकृति छिप जायेगी। किन्तु सांची–तोरण पर इसे प्रदर्शित करने के लिए आकृति के ऊपर दूसरा आकार उत्कीप्र है। तथा आंशिक रूप से ढका हुआ है। उससे गहराई का मिथ्या ज्ञान हो जाता है। गहराई का ऐसा प्रदर्शन अन्यत्र नहीं है। किसी पदार्थ का आकार दूरी के कारण छोटा या बड़ा नहीं दिख पड़ता किन्तु वृत्तिमूलक महत्व को ध्यान में रखा गया है। दृष्टिगत पदार्थ के रूप में कलाकार का मार्ग–दर्शन नहीं होता, अपितु उनकी जानकारी ही वास्तविक स्वरूप के प्रदर्शन हेतु बाध्य करता था। कथानक के अनुसार भी कला में वस्तुओं को सजाया है। कार्यपद्धति में उसे सुसंगत होना अनिवार्य था, यद्यपि दर्शकों की दृष्टि में अमुक प्रदर्शन अयथार्थ हो।

3. मनुष्याकृति का शुभारंभ –

सांची तोरण की खुदाई एक व्यक्ति की कृति नहीं है। कलाकारों द्वारा यह कार्य संपन्न हुआ था। व्यक्तिगत आकार बड़ी ही कुशलतापूर्वक परिष्कृत ढंग से उत्कीर्ण है। कलाकारों ने काल्पनिक रूपचित्र को नहीं प्रदर्शित किया, परन्तु मानव शरीर की जानकारी एवं अंगों को सप्राण मानकर उत्कीर्ण किया। यक्ष–यक्षिणी वनजातियों के देवता थे, जिनको ब्राह्मण एवं बौद्ध कला में बड़े सुंदर तथा सतीव रूप में दिखाया गया है। पूर्वकाल में तोरण पर यक्ष हतोत्साह या शक्तिहीन प्रदर्शित है। किन्तु, सांची तोरण पर सुदृढ होकर खड़े दिखते हैं। यक्षिणी तथा शालमंजिका प्रदर्शन में शरीर की सौंदर्य तथा परिरेखा द्वारा सुंदर नारी के रूप में प्रकट हो रही है। यह सत्य है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण में भी का मुख विभिन्नता लेकर उत्कीर्ण नहीं है, सभी का चेहरा एक समान है किन्तु, अन्य मनुष्यकाकार प्रदर्शन में भावात्मक पृथकता है। नग्न दिख पड़जी है,पारदर्शक वस्त्रसहित प्रदर्शित है। सांची तोरण के शहतीर के मध्य रिक्त भाग में घुड़सवार की आकृतियां बनाई गई हैं। खाली जगह को भरने के लिए घुड़सवार खडे किये हैं, लेकिन इसका गूढ अर्थ यह भी समझा जाता है कि सांची के कलाकार ने मनुष्य की आकृति का शुभारंभ किया है। भरहुत या बोधगयाकी प्रतीकात्मक नमूनों में

यथ किसी रूप में भी मनुष्य की मूर्ति का प्रदर्शन नहीं है। सांची में इसे आरम्भ कर भारतीय कला में इसे जारी रखा गया और कालांतर में महायान मतानुयायियों ने इससे प्रेरणा लेकर बुद्ध की प्रतिमा तैयार करायी।

4. वनस्पति परिकल्पना की चरमसीमा–

यह कहा गया है कि सांची कला में वास्तविकता तथा सही प्रदर्शनों का मेल हो गया था। परिरेखा के दिखाने में कलाकार दक्ष थे। वास्तविक आकार से विज्ञ थे। अतएव लता, पत्र पुष्प आदि का प्रदर्शनों में अनुपात वर्तमान हैं। पूर्वप्रचलित शैलियों से अत्यंत सौन्दर्यमय तथा अतिश्रेष्ठ समझे जाते हैं। शुंगकालीन वेदिका के उष्णीस पर लताएं प्रदर्शित है। उनकी विशिष्टता यह है कि उन प्रदर्शनों में प्रवाह है, लताओं के मोड़ या घुमाव से पशु–पक्षी भी संबद्ध हैं। कोई भी उन्हें असंबद्ध नहीं कह सकता। उन गतिमान पत्रपुष्पों की तालमय स्थिति है। पृथक् अस्तित्व रखते हुए भी सभी प्रवाहित धारा के सहायक हैं, उसके अंग समझे जा सकते हैं।

5. मालवा शैली का प्रभाव–

मध्य भारत में अशोक के पूर्व देशज कला के नमूने पाए गए हैं, जिन्हें यक्ष का नाम दिया गया है। यद्यपि यक्ष–यक्षिणी की भावना नवीन न थी, तथापि उनका साकार प्रदर्शन पूर्व मौर्य युग में पाया जाता हैं विदिसा, बरौदा एवं पटना से यक्ष–यक्षिणी का समावेश भरहुत वेदिका स्तंभों पर पाया जाता है। सांची में भी विदिसा के यक्ष सदृश आकार दिख पड़ते हैं। इस कारण यह कहना उचित है कि पूर्वमौर्ययुगी मालवा शैली का प्रभाव शुंगकालीन कलाकृतियों में प्रकट होता है। यक्ष, यक्षिणी सालभंजिका उसके दृष्टांत हैं जो यह रीति समाप्त हो पाई। मथुरा की बौद्ध कला में मालवा प्रभाव स्पष्ट है। मथुरा से अमरावती भी पहुंचा। भारत के बाहर सिंहल के अनुराधापुर की विशाल बुद्ध प्रतिमा में मालवा की देशज शैली का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है।

सांची स्तूप सं0 2

सांची के स्तूप सं0 2 में साधारण रीति से वेदिका का प्रदर्शन किया गया है। वेदिका स्तंभ तथा सूची पर गोलाकार फलक में नाना जानवर, पक्षी, पुष्प तथा श्रेष्ठी के सिर की आकृतियां दिखती हैं। इसमें मुख्य स्तूप की वेदिका से कई अंश में भिन्नता है। मुख्य स्तूप की वेदिका सादे अनलंकृत प्रस्तर के हैं। जहां कि उसी स्थान पर स्तूप सं. 2 की वेदिका फलक द्वारा अलंकृत है। इन सभी उत्कीर्ण विषयों के परीक्षण से प्रकअ होता है कि सांची की खुदाई में एक व्यक्ति का हाथ न था। प्राचीनता तथा नवीनता का समिश्रण पाया जाता है। सांची की कला प्राकृतिक रूप से तैयार हुई। कलाकारों ने दक्षता के अनुसार चित्रों को सहज तथा स्वच्छन्द बनाया हैं कलाकारों ने संसार के सभी विषयों का संग्रह किया हैं सांची में मध्य भारतीय जीवन का वास्तविक एवं सुन्दर प्रदर्शन है और भरहुत तथा बोधगया से अनवरत विकास की ओर चलता गया।

अमरावती स्तूप

शुंगकालीन भरहुत तथा सांची के समकालीन दक्षिण भारत में अनेक सतूप निर्मित हुए थे। सभी कृष्णा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित हैं। तमिलनाडु प्रदेश के गुंटुर जिले के अंतर्गत दक्षिण के शासक सातवाहन नरेशों के प्रोत्साहन से इन्हें बनाया गया था। कलकत्ता–मद्रास रेलवे से बेजवाड़ा स्टेशन से मचेरा होकर वास्तविक स्थान पर पहुंच जाते हैं। वर्तमान समय में सरकार ने पूरे स्थान की खुदाई समाप्त कर ली और स्तूप के विभिन्न भाग पृथक–पृथक संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। आंध्रप्रदेश में ईसवी पूर्व सदियों में स्तूपों का निर्माण होता रहा। उनमें से अमरावती भट्टिप्रोलू, जगय्यापेट, घंटशाला तथा नागार्जुनी कोंडा से संबद्ध है, जो बीस मील के क्षेत्र में फैले हैं। इनमें ाकेइ भी सुरक्षित नहीं है। उनके भग्नावेश उपलबध हैं। स्तूप के अंड पर खुदे प्रस्तरों पर स्तूप का आकार उत्कीर्ण है, जिससे मूल रूपरेखा का ज्ञान हो जाता है। दक्षिण भारत की स्तूप–निर्माण शैली उत्तरी भारत से भिन्न है। स्तूप का चबूतरा ईंट से बना है। इसमें बाहरी दीवाल तथा नाभि में दूसरी दीवाल निर्मित है। दोनों गोलाकार दीवालों को ईंट की पंक्तियों से कई भागों में विभक्त कर रिक्त स्थानों को मिट्टी से भर दिया गया है। उसके विपरीत मध्यभारत के स्तूप के आधार की योजना पृथक् रीति पर तैयार की गई थी। चबूतरा तैयार कर अर्द्धगोलाकार भाग निर्मित हुआ। तत्पश्चात उसे संगमरमर के प्रस्तर से आच्छादित कर उत्कीर्ण किया गया। सबसे ऊपरी भाग सफेद सांचे में ढले हुए है। चबूतरा भी सर्वत्र अच्छी प्रकार खुदा हे, जिसमें कोई भी अंश अनलंकृत नहीं है। उपासकों के लिए ऐसा सुन्दरउत्कीण्र दृश्य अनयत्र नहीं मिलेगा। अंड के चारों तरफ एक गोलाकार सीढी थी, जिसके देखने से स्तूप की ऊँचाई का अनुमान किया जा सकता है। उसी से संबद्ध चारों दिशाओं में चौकोर प्रक्षेपण तैयार किया गया है। उसी प्रक्षेपण की दोनों भुजाओं में ऊपर प्रदक्षिणापथ के लिए तैयार भी है। उस निकले हुए भाग के चबूतरेनुमा अंश पर पांच पतले स्तम्भ खड़े दिखते हैं, जिन्हें आयक स्तम्भ कहा गया है। इस तरह के आयक स्तम्भ की स्थिति अन्य किसी भारतीय स्तूप में नहीं दिखती है। अमरावती की दूसरी विशेषता यह है कि स्तूप का प्रत्येक भाग संपूर्ण वेष्टनी, तोरण तथा अंड भलीभांति अलंकृत है। भारतीय स्तूप के

हर एक भाग की ऊँचाई की ओर कलाकारों का ध्यान केन्द्रित था, अतएव स्तूप की ऊँचाई दिनोदिन बढ़ती गई। चीनी यात्रियों ने इन्हें गुबज कहकर उल्लेख किया है। वृहत्तर भारत में तो अत्यधिक ऊँचाई दिखती है। अतएव नेपाल तथा वर्मा आदि देशों में क्रमशः स्वयंभूनाथ एवं मिंगलाजेदी पगोदा इतने ऊँचे हैं, मानों आकाश छू रहे हों। अर्द्धगोलाकार ने भी मीनारनुमा आकार ग्रहण कर लिया है और वास्तविकता का महत्व नष्ट होता गया।

दक्षिण भारत के स्तूप ईसा पूर्व द्वितीय सदी में आरंभ हुए थे। उस स्थान के लेख से अमरावती स्तूप की प्राचीनता का ज्ञान हो जाता है। संभवतः 18वीं सदी तक स्तूप पूजा का क्रम चलता रहा। जनता आदरपूर्वक श्रद्धा अर्पित करती थी। दक्षिण में यूरोप के निवासियों ने इसे नष्ट कर दिया, ऐसा अनुमान लगाया जाता है। स्तूपों की जटिलता के कारण इन्हें महास्तूप या महाचैत्य कहा गया है।

हीनयान एवं महायान प्रदर्शन

ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी में अमरावती क्षेत्र में स्तूप का निर्माण आरंभ हुआ। अतः शुंगकालीन हीनयान प्रतीकों का सुंदर प्रदर्शन मिलता है। भगवान बुद्ध के जन्म–प्रतीक हाथी को जिस रूप में यहां उत्कीर्ण किया गया है, वैसा अन्यत्र अज्ञात है। उस प्रदर्शन में एक प्रस्तर को तीन विभागों में बांटा गया है। एक भाग में बोधिसत्व से प्रार्थना की जा रही है कि वे अवतरित हों। मध्यभाग में रथ पर हाथी को बाजे सहित ले जा रहे हैं। तीसरे में मायादेवी का सपना। हाथी की आकृति सिरे पर। इसके अतिरिक्त वृक्ष की पूजा दिखलाई गई है। अतीव सुंदर कला कौशलपूर्ण स्तंभ पर चक्र को स्थान दिया गया है। उसी प्रकार वेदिका स्तंभ पर स्तूप का रूप चित्र दिखता है। अमरावती में संपूर्ण स्तूप को अनेक स्थानों पर प्रस्तर में खोदकर मूलस्तूप का आकार सामने उपस्थित किया गया है। इन चार प्रधान प्रतीकों के अतिरिक्त भगवान के पदचिन्ह को सुन्दर रीति से उत्कीर्ण किया गया है। कई स्थानों पर विस्तृत रूप से भगवान् के भिक्षापात्र को जुलूस के साथ प्रदर्शित देखते हैं। मध्य में भिक्षा पात्र को टोकरी में रख कर एक मुनष्य जुलूस में समूह के साथ जा रहा है। ऐसे पारिभोगिक स्तूप का दूसरा उदाहरण नहीं मिलता।

अमरावती स्तूप का अलंकार कई सदियों तक चलता रहा। ई0 सन के पश्चात् वेदिका उत्कीर्ण की गई। उत्तर से दक्षिण भारत का संबंध बना रहा, इस कारण मध्य भारत एवं मथुरा की कला अमरावती को प्रीाावित कर सकी। कनिष्क के शासन में महायान का शुभारंभ हो गया था, इस कारण बुद्ध की प्रतिमाएं बनने लगी। अतएव प्रतीक को छोड़कर उसी स्थान पर बुद्धमूर्तियां भी उत्कीर्ण हुई।

अलंकरण के आधार

दक्षिण भारत में स्तूप–निर्माण के अनेक युगों में कला की प्रधानता है। सभी एक युग अथवा एक साथ निर्मित नहीं हुए। ईसा पूर्व सदियों में स्तूप को ईंट से तेयार किया गया था, परन्तु क्रमशः संगमरमर के प्रस्तर के अंड को आच्छादित किया गया। यही कारण है कि अंड का संपूर्ण भाग अलंकृत हो सका। ईंट पर खुदाई का कार्य संभव न था, किन्तु संगमरमर के कारण उन प्रस्तर खण्डों को सुन्दर रीति से उत्कीर्ण करने में कलाकारों ने अपनी कुशलता दिखाई। स्तूप के पश्चात वेष्टनी की गणना होती है। अमरावती के चबूतरे के बाहर निकले चौकोर भाग पर चारों दिशाओं में आयक–स्तम्भ हैं। आयक–स्तम्भ नीचे चौकोर है, मध्य में अष्टकोण सहित तथा सिरे पर गोलाकार हैं। पचास फीट ऊँचे अंड को ढंकने के लिए इनका निर्माण हुआ था। आयक चबूतरे को भी भलीभांति अलंकृत किया गया है। सांची वेदिका की तरह दक्षिण में भी स्तूप की वेष्टनियां काष्ठ की बनी थीं। उनके स्थान पर स्थायी रूप से प्रस्तर की वेदिका तैयार की गई। वेदिका के तीन अंशों– स्तंभ, सूची तथा उष्णीस को कलाकारों ने अत्यन्त कलापूर्ण एवं सुन्दर ढंग से सजाया है, जो देखते बनता है। स्तंभों पर प्रतीकों का प्रदर्शन है, विभिन्न आकार की बुद्ध–प्रतिमाएं तथा उपासकों का झुंड प्रदर्शित है। सूचियों पर गोलाकार फलक कमल पुष्प के रूपचित्र से भरे हैं। उष्णीस –लता–पत्र–पुष्प के प्रवाहित लहरों तालबद्ध हिलोर से सुशोभित हो रह हैं। दक्षिण के कलाकार मध्य भारत या मथुरा की शैली से प्रभवित हुए थे। अतएव, अमरावती के भू–भाग में उत्पन्न कला एकांगी या एकाकी नहीं है, अपितु संबंधित हैं तथा पृथक् भावना का अभाव है।

अमरावती का क्रमिक विकास

अमरावती के भूभाग में जो कलात्मक उन्नति दिखती है उसका विकास कई सदियों में हुआ। उसके चार काल–विभाग किये जाते हैं।

1. ईसवी पूर्व 200–100 – इस युग की कला में मध्य भारत का प्रभाव स्पष्ट हैं भरहुत की योजना को लेकर दक्षिण में स्तूप निर्मित हुए। इस युग में जितने यक्ष–यक्षिणी का प्रदर्शन है, सभी के चेहरे पर स्फुर्तिरहित हैं। ओठ मोटे हैं। शरीर चिपटे ढंग का है, कपड़े जांघ तक शरीर को ढके हैं। यक्षिणी श्री मां देवता वामन के पीठ पर खड़ी हैं।
2. पहली सदी– इस काल में महायान मत का उदय हो गया था। अतएव, दूसरी पीढ़ी पर बुद्ध प्रतिमा का निर्माण पाते हैं। इसमें मथुरा के मांसल शरीर तथा विशालकाय बुद्ध मूर्ति की समानता प्रकट होती है।
3. ई0 स0 150 तक – अमरावती–वेदिका पर सातवाहन नरेश पुलुमावि (150 ई0), यज्ञ श्री सातकर्णि (100 ई0) तथा शिवमक सातकर्णि के नाम लेखों में उत्कीर्ण हैं। अतएव, वह कलात्मक कृति दूसरी शताब्दी की मानी गई है। इस समय वेदिका सुसंगठित हुई। सुन्दर रीति से उत्कीर्ण की गई। सातवाहन युग की कला चरम सीमा को प्राप्त कर ली। वेदिका पर गहराई में खोद कर मनुष्य का आकार तैयार किया गया है। इसमें मानव की मानसिक भावनाओं का परिज्ञान हो जाता है। दूसरी सदी की कलाकृति सर्वोत्कृष्ट समझी गई है।
4. 200–250 ई0 तक– इस काल में मनुष्य की आकृति पतला तथा कद लंबा दिखता है। अंड के आच्छादित प्रस्तरों पर खुदाई इसी युग में हुई। मानव–आकृति में वस्त्राभुषण की सजावट अद्वितीय है। अमरावती के निर्माण तथा अलंकार ईसा पूर्व 200 से आरंभ होकर दूसरी शती में चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं। नागार्जुनी तथा अमरावती समकालीन हैं। इक्षवाकु नरेश के समय–सतूप का संस्कार कर आयक–स्तम्भ को जोड़ दिया गया है। नागार्जुनी कला पर अमरावती ने पर्याप्त उन्नति की। सातवाहन युग के

सर्वोत्कृष्ट कला का नमूना अमरावती वेदिका पर दिखता है। अमरावती में गहरे कटान द्वारा सांची की समानता प्रकट होती है। जग्गय्यपेट की खुदाई (ई0पू0 200) भी दर्शकों को आकृष्ट करती है। इस प्रकार कृष्णा नदी के किनारे जितनी कलाकृतियों के आधार उपलब्ध हुए हैं, उनमें अमरावती के अंउ तथा वेदिका पर उत्कीर्ण नमूने सर्वांगीण सुन्दर तथा सर्वोत्तम हैं।

भारत में स्तूप–निर्माण एवं इतिहास

यह कहना सर्वथा सत्य है कि वास्तुकला में स्तूप बौद्धों की देन है। पुरातत्व की खुदाई से जितने भग्नावशेष उपलब्ध हुए हैं, सभी बुद्धयुग के पूर्व के नहीं है। भगवान बुद्ध को चक्रवर्ती तथा महान योगी के रूप में सर्वत्र दिखलाया गया है। अतएव चक्रवर्ती के स्वरूप को हरमिका के मध्य जो छत्रयष्टि निकलती है, उसके सिरे पर चार, आठ, नौ या ग्यारह तेरह छत्र दिखते हैं। यह भावना सांची तोरण के शहतीरों पर प्रदर्शित जातक प्रदर्शन में भी दिख पड़ती है। महाभिनिष्क्रमण के घोड़े के सिरे पर छत्र, षड्दंत हाथी के सिरे पर छत्र, भस्मपात्र के ऊपर छत्र आदि प्रदर्शनों में बुद्ध को चक्रवर्ती समझा गया है। महायोगी के रूप में भी भगवान बुद्ध को कई स्थानों पर दिखाया गया है। तपस्या करते बुद्ध के शरीर का अस्थिपंजर सहित प्रतिमा गांधार में बनाई गई थी। अजंता चित्रों में महायोगी बुद्ध उपदेश करते चित्रित हैं। कलाकारों ने चक्रवर्ती के स्वरूप को अधिक प्रदर्शित किया। स्तूप की परम्परा को वर्तमान काल में भी भग्नावशेष तथा कई खड़े स्तूप या पूजानिमित स्तूप के रूप में देखते हैं।

वैदिककालीन स्मारक के रूप में लौरिया नन्दन के स्तूप का नामोल्लेख किया जा सकता है। साहित्य के आधार पर यह ज्ञात होता है कि भागवान बुद्ध ने अपने केस को तपुस तथा भलिक नामक व्यापारियों को दे दिया था, जिसके ऊपर उन्होंने उड़ीसा में स्मारक बनवाया था। बुद्ध के भस्म से संबंधित स्मारक बनाने के लिए महापरिनिर्वाण के बाद राजवंशों में युद्ध भी हुआ और अंत में आठ वंशों में उस राख का बंटवारा किया गया । उसी का प्रदर्शन सांची तोरण के शहतीर पर किया गया है। युद्ध की तैयारी तथा संधि के फलस्वरूप आठ हाथियों के मसतक पर भस्मकलश है। प्रत्येक भस्मपात्र के ऊपर छत्र दिखता है। अतएव, उसे चक्रवर्ती बुद्ध का शरीर ही माना जा सकता है। उन राजाओं ने आठ स्तूपों का निर्माण किया होगा, इसमें संदेह नहीं। किन्तु, पुरातत्व की खुदाई से वैशाली का स्तूप ही प्रकाश में आया है।

पारिभोगिक धातु के संबंध में दो शब्द कहना अप्रासंगिक न होगा। बौद्ध चीनी यात्रियों ने उनकी चर्चा की है। फाहियान ने बुद्ध के भिक्षापात्र का वर्णन किया है। ह्वेनसांग ने भगवान के चूड़ा का वर्णन किया है। अमरावती स्तूप के अलंकरण में भिक्षापात्र तथा चूड़ा–पूजा के दृश्य दिखते हैं। पारिभोगिक स्मृतिचिन्ह का वर्णन आया है। सभी स्तूपों में स्मृतिचिन्ह नहीं पाए जाते। कुद भगवान् की यात्रा की यादगार में निर्मित हैं। बुद्ध ने प्रथम उपदेष सारनाथ में दिया था। जहां पांच सौ प्रत्येक बौद्ध को निर्वाण मिला था। उसी स्थान पर दो स्तूप और तैयार किये थे, जिनके अवशेष नहीं मिले हैं।

ईसा पूर्व पांचवी सदी में पिपरावा नामक स्थान पर स्तूप तैयार किया गया था, जो ईंट का बना है। उससे संबंधित कलश पर निम्नलिखित लेख उत्कीर्ण है–

सुकिति भतिनं सभगिनिकं

सपुतदलनं इयं सलिल निधने

बुधस भगवते सकियानं।

सुकीर्ति एवं भक्ति नामक व्यक्तियों ने स्त्री–पुत्रों के साथ भगवान् बुद्ध के शारीरिक स्मृतिचिन्ह के पात्र को दान दिया। लेखन शैली के अनुसार विदित होता है कि इस स्तूप का निर्माण अशोकपूर्व काल में हुआ होगा। ह्वेनसांग के कथनानुसार अशोक ने पूर्व स्तूपों से धातु निकाल कर चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण किया तथा पूजा का प्रचलन किया। इस कारण स्तूप का निर्माण बौद्ध धर्म से संबंधित हैं, इसमें संदेह नहीं। अशोक ने दो स्थानों पर स्तूप निर्मित किए।

1. बुद्ध के जीवन–संबंधी स्थान और
2. बुद्ध धर्म से संबंधित स्थान।

भगवान् बुद्ध ने स्वयं आनंद से कहा था कि स्तूप का निर्माण चौराहे पर होना चाहिए। इसी कारण अशोक के समय में दोनों प्रकार के स्थानों को चुना गया और स्तूप निर्मित हुए। अशोक के शासनकाल में स्तूप–निर्माण का कार्य अत्यधिक स्थानों या संख्या में संपन्न हुआ था। सारनाथ, नालंदा, संकिसा, राजगृह, श्रावस्ती, बोधगया

एवं वैशाली आदि स्थानों में भगवान ने वर्षावास किया था एवं उपदेश दिये थे। अतः इन स्थानों पर स्तूप का निर्माण उचित ही था। तक्षशिला, भरहुत सांची, अमरावती आदि ऐसे स्थान हैं, जहां बुद्ध स्वयं न जा सके और न उस स्थानों पर सीधा धार्मिक महत्व था। परन्तु चौराहों पर स्थित होने के कारण एवं राजमार्ग की प्रधानता के कारण अशोक ने वहां स्तूप बनवाया। भारत में संभवतः पारिभोगिक स्तूपों का महत्व न रहा होगा। अतएव स्मृतिचिनह पर ही स्मारक बनाए गए।

मौर्यकाल से पूर्व जिन आठ नरेशों ने भस्म का बंटवारा किया था, उनके स्तूपों का वास्तविक रूप में ज्ञान नहीं है। राजगृह के स्तूप को अजातशत्रु ने स्तूप के बाहरी भाग पर सीमेंट के सहारे छोटी मूर्तियां बनाई गई थीं, जिनके स्थान का अंदाजा लगाया जाता है। प्लास्टर या सीमेंट की बनी प्रतिमाएं संग्रहालय में सुरक्षित हैं। कपिलवस्तु या कुशीनगर के प्राचीनतम स्तूपों के भग्नावशेष प्रकाश में नहीं आये हैं। जो स्तूप के आकार के हैं, उनका ईसा पूर्व छठी सदी में निर्मित मानना संदेहात्मक है। इस तरह पिपरावा को छोड़कर अशोक से पूर्व निर्मित स्तूप की स्थिति में संदेह होता है।

अशोक ने स्तूप–पूजा के निमित्त हजारों स्तूपों को तैयार किया, जिनके संबंध में पूरी जानकारी नहीं है। तक्षशिला तथा सारनाथ में बड़े विशाल स्तूप बनवाये गये जिन्हें धर्मराजिका कहते हैं। सारनाथ स्तूप–धर्मराजिका के चारों तरफ छोटे–छोटे पूजा निमित्त स्तूप बनाये गये थे, जो अधिकतर भग्नावस्था में है। उसी के समीप अशोक का स्तम्भ लेख खड़ा है, जिनके अधोभाग पर उत्कीर्ण धर्मशासन आज विद्यमान है। मूलग्रंथ कुटी बिहार के समीप धमेक स्तूप खड़ा है, जो ईट का बना है। चालीस फीट तक धमेक का बाहरी आकार प्रस्तर से आच्छादित किया गया है। उस भाग के प्रस्तर विभिनन आकार के ज्यामिति के कटान से सुशोभित है। उसके ऊपर एक सौ दस फीट तक सादी ईट दिख पड़ती है। धर्मराजिका के विषय में यह कहा गया है कि काशीनरेश राजा चेतनसिंह ने उसकी ईटों या प्रस्तरों को हटा दिया, जिससे स्तूप नष्ट हो गया। धर्मराजिका स्तूप एक दूसरे के ऊपर क्रमशः छह बार आच्छादित किया गया था। तक्षशिला तो चौराहे पर स्थित होने के कारण यात्रियों को आकृष्ट कर सका। सारनाथ में धर्मराजिका स्तूप का निर्माण यथोचित

था। भरहुत तथा सांची के स्थान के महतव को समझकर एवं राजमार्ग में स्थिर होने के कारण अशोक ने स्तूप तैयार करवाया जिसके पूर्व रूप का अनुमान मात्र कर सकते है। ईंट के स्तूप को शुंगकाल में प्रस्तर से आच्छादित किया गया, जिनका वर्णन किया जा चुका है। सांची के तीनों स्तूपों को अशोक ने तैयार किया या नहीं, यह अंतिम रूप में नहीं कहा जा सकता, किन्तु मुख्य स्तूप तथा समीप में स्तंभ के संबंध में संदेह नहीं किया जा सकता, सांची का महत्व तो गुप्तकाल तक बना रहा, परन्तु भरहुत का अंत शुंगकाल के बाद अवश्य हो गया। संकिसा तथा श्रावस्ती के स्तूपों को किसने तैयार कराया, यह अज्ञात है। बुद्ध के जीवन से इस स्थानों का संबंध था। संकिसा में भगवान् स्वर्ग में मायादेवी को बुद्धधर्म का उपदेश देकर अवतरित हुए थे। श्रावस्ती जाने के लिए अनाथपीडिक को बुद्ध का आदेश हो गया। वहां कई वर्षावास व्यतीत किए। जेतवन विहार में निवास किया गया तथा धर्म का उपदेश देते रहे। नालंदा के मूल स्तूप का निर्माण अशोक ने अवश्य किया था। वहां भगवान निवास करते रहे। किन्तु वह स्तूप कई बार नष्ट हुआ तथा उसका जीर्णोद्धार किया गया। अंतिम स्वरूप पालयुगी समझा जाता है।

दक्षिण भारत में तमिलनाडु प्रदेश के गंटुर जिले में सभी स्तूप ई. पूर्व पहली शती से तीसरी शती ई. तक निर्मित हुए थे। उन पर प्रदर्शित हीनयान मत के कतिपय प्रतीक इस कथन को प्रमाणित करते हैं। महायान संबंधी प्रतिमाएं भी दिखती हैं। आंध्र प्रदेश में कृष्णा नदी के किनारे इन स्तूपों की स्थिति से अनुमान लगाया जा सकता है कि सातवाहन नरेशों ने स्तूप–निर्माण को प्रोत्साहित किया था। स्तूपों पर आच्छादन, आयक–स्तम्भों का निर्माण तथा अन्य अलंकरण साधन ईसवी सन् के पश्चात तैयार हुए। इस प्रकार कई सदियों तक आंध्र प्रदेश में यह कार्य चलता रहा। अमरावती, जग्गय्यपेट, घंटशाला, भट्टप्रोलू स्तूपों का बुध धर्म की प्रगति का द्योतक है। जग्गय्यपेट तथा अमरावती की कला में समानता हैं और यह भी सुझाव रखा गया है कि वह अमरावती से पूर्व निर्मित हुआ। दोनों में तीस मील का अंतर है। इनकी वेदिकाएं तथा अंड पर संगमरमर को हटा कर स्मारक को नष्ट कर दिया। उनके अवशेष मद्रास संग्रहालय में सुरक्षित है। मछलीपट्टनम से बीस मील दूर घंटशाला स्तूप बना था। इसके टीले का सर्वेक्षण यह बतलाता है कि छप्पन

फीट गोलाकार दीवाल जो अंतर रेखा से संबंधित थी, उसके चबूतरे की ही दीवाल है।

दूसरी शती ई0 पू0 में स्तूपों को स्थायी रखने की योजना कार्यान्वित की गई। यद्यपि शुंगनरेश बौद्धमतानुयायी न थे, किन्तु उन्होंने किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न की। भरहुत तथा सांची के स्तूपों पर प्रस्तर का आच्छादन किया गया। काष्ठ की वेष्टनी प्रस्तर की बनाई गई और उसे सुन्दर रीति से अलंकृत किया गया। पहली सदी से स्तूप–निर्माण का अभ्युदय दिखलाई पड़ता है। कुषाण राजा कनिष्क ने बौद्ध होने के कारण कई स्तूप बनवाये। ह्वेनसांग ने उल्लेख किया है कि पेशावर में कनिष्क द्वारा 400 फीट ऊँचा स्तूप बनाया गया, जिसकी वेदिका 150 फीट ऊँची थी। आज उस स्तूप का पता नहीं है। उसके समीप अन्य स्तूप थे। संभवतः राजाश्रय पाकर गंगा की घाटी से हटकर उत्तर–पश्चिम भारत तथा अफ़गानिस्तान में स्तूप बनाए गए। वे सभी भाग कनिष्क के राज्य में सम्मिलित थे। मानिक्याला के भूभाग में अनेक स्तूप बने थे। कनिष्क के विस्तृत साम्राज्य में बल्ख एवं खोतन तक स्तूपों का जाल बिछा था। चीनी यात्रियों ने सैकड़ों विहारों का उल्लेख किया है जो उत्तर–पश्चिम एवं काबुल तक फैले थे। यूरोप के विद्वानों ने गांधार तथा जलालाबाद के क्षेत्र में सर्वेक्षण पर सैकड़ो स्तूपों का पता लगाया है। इन स्तूपों का रूप उत्तरी भारत के स्तूपों से अधिक मिलता है। प्रायः सब वर्गाकार चबूतरे पर बने हैं। वहीं से स्मारक का ऊपरी आकार प्रारम्भ होता है। स्तूप के अंड का भाग संपूर्ण रूप में नहीं मिलते। भग्नावशेष से प्रकट होता है कि उनका अंड अर्द्धगोलाकार या नुकीला था। किसी में गुंबज के मध्य में ऊँचा स्थान बना था। खैबर के भूभाग में भी छोटी पहाड़ी के ऊपर बौद्ध स्मारकों का ढेर है, किन्तु उनके आधार के अतिरिक्त अन्य भागों का पता नहीं है। उन स्तूपों के चबूतरे पर सीमेंट के रूपचित्र बने हैं। चबूतरा ताख से भरा पड़ा है और उसी में धार्मिक मूर्तियां रखी हैं जो प्लास्टर की बनी है।

गांधार का सर्वप्रसिद्ध स्तूप मानिक्याला के नाम से प्रसिद्ध है, जो रावलपिंडी से बीस मूल दूर है। इस स्थान पर एक लेख उपलब्ध हुआ है, जो कनिष्क के 18 वें वर्ष का है। इस स्तूप को खोदने पर एक भस्मकलश मिला, जिसे मध्य में कई सिक्के

तथा मोतियां एक सोने के पात्र में रखे थे। वह स्वर्णपात्र चांदी तथा चांदी का पात्र तांबे के बरतन में रखा था। वह ढक्कन से बंद पाया गया था तथा जमीन की सतह से दस फीट ऊँचे पर प्राप्त हुआ था।

मानिक्वयाला स्तूप का चबूतरा गोल है तथा उस पर अर्द्धगोलाकार गुंबज है। वह 127 फीट व्यास तथा 400 फीट क्षेत्रफल में विसतृत हैं। इस प्रकार उत्तर–पश्चिम में भारत में अनगिनत स्तूप बनाए, जिनका एकमात्र उद्देश्य पूजा ही रहा होगा। उत्तर भारत के स्तूपों से इनमें अधिक अंतर रहा। उनमें अलंकरण का नाम ही था। आधार पर प्लास्टर की बनी मूर्तियां कहीं–कहीं मिलती हैं अन्यथा और सभी स्थानों पर अलंकरण का अभाव है। वेष्टनी बनाने की परिपाती अज्ञात थी। स्तूपों के साथ महाविहार का होना इस प्रदेश की विशेषता है। सभी स्तूप प्रस्तर के बनें हैं, क्योंकि वह सामग्री सुलभ थी। संक्षेप में यह कहना आव्ष्यक है कि बौद्धनरेश कनिष्क का प्रश्रय पाकर उत्तर–पश्चिम भारत में स्तूप बने जिनमें गांधार शैली विशेषकर प्लास्टर प्रतिमा स्पष्ट है। तक्षशिला का धर्मराजिका मानक्यिाला के अतिरिक्त सभी स्तूप ढोल आकार के हैं पांचीवी–छठी शती का सिंध प्रदेश में अनेक स्तूप निर्मित हुए। ईंट का अधिकतर प्रयोग किया गया है। धीरपुर खास का स्तूप गुप्त कला से प्रभावित है।

भारत में चौथी सदी से गुप्तवंश का उत्थान हुआ, किन्तु गुप्तनरेश परम वैष्णव थे। उनके राज्यकाल में सारनाथ, श्रावस्ती तथा कसिया में स्तूप बनाये गये। इनमें प्राचीन परिपाटी का निर्वाह नहीं दिखता है। इनमें क्रमशः ऊपर–ऊपर कई चबूतरे भी स्थित हैं तथा अंड ढोल आकार के हैं। उत्तर गुप्तकाल में स्तूप–पूजा पर बौद्धनरेशों की अस्था कम हो गई। महायान मत में हजारों बुद्ध प्रतिमाएं बनी, जिनका एक लक्ष्य था–पूजा। अतः प्रतिमा स्थापना को अधिक महत्व दिया गया। पूर्वी भारत के पालनरेश परम सौगत होते हुए भी स्तूप निर्माण की ओर आकर्षित न हुए। उनके शासन में स्तूप का जीर्णोद्धार अवश्य हुआ। नालंदा के मल स्तूप का कई बार संसकार किया गया था। पालयुग में भी उसकी वृद्धि हुई। वर्तमान खुदाई से पांच बार तक उसकी मरम्मत एवं वृद्धि का अनुमान लगाया जाता है। उसके चारों तरफ पूजा–स्तूप निर्मित हैं। मूल सतूप अशोक ने बनवाया था। अंतिम संस्कार पालयुग में हुआ। भागलपुर जिले में अतिंचक स्थान से एक विशाल स्तूप का आकार

प्रकाश में आया है। उस स्थान का विक्रमशिला से एकीकरण करते हैं। इसे पालराजा धर्मपाल ने तैयार किया। स्तूप की बाहरी दीवाल पर से मिट्टी के ठीकरे संबद्ध है। उन पर नाना प्रकार के रूपचित्र मिले हैं। इसकी पहाड़पुर के स्तूप से समता कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उत्तर गुप्तकाल से स्तूप–निर्माण के कार्य समाप्तप्राय हो गये। स्थान–स्थान पर प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गई। विहार में ही पूजागृह बन गये। भिक्षु या उपासक पूजा के लिए कहीं नहीं जाते। इस प्रकार पांचवी सदी से स्तूप निर्माण कार्य ह्रास होने लगा।

कतिपय स्तूपों के भग्नावशेष

सारनाथ

वाराणसी के समीप सारनाथ नामक प्राचीन स्थान है, जहां भगवान बुद्ध ने प्रथम उपदेश किया था। प्राचीनतम नाम मृगदाव था, जहां काशीनरेश ब्रह्मदत्त शिकार खेलने जाया करता था। जातक में वर्णन है कि एक समय बुद्ध बोधिसत्व का जन्म ग्रहण कर सारंगनाथ स्वरूप में मृगदाव में विचरण कर रहे थे। उन्होंने काशीराज को अहिंसा की शिक्षादी। इसी कारण सारंगनाथ के स्थान को वर्तमान काल में सारनाथ के नाम से पुकारते हैं। बोधगया में बुद्धत्व–प्रापित के बाद भगवान बुद्ध सोच रहे थे कि प्रथम धर्मचक्र कहां आरी किया जाय। तपस्या करते समय उरूबेला में बोधगया के समीप गौतम को पांच भिक्षुओं से भेंट हुई थी। सभी घोर तपस्या में लीन थे। कुछ समय बाद जब सिद्धार्थ गौतम को ज्ञान न हुआ, तो उन्होंने तपस्या को निरर्थक घोतिक कर दिया। उनके सहयोगी पांच साधु गौतम को संस्काररहित मानकर उरूबेला से हट कर मृगदाव चले आये थे। बुद्धत्वप्राप्ति के बाद बुद्ध को अंतर्ज्ञान हुआ कि पूर्व परिचित साधुगण मृगदाव में तपस्या में लीन हैं। इसी कारण यह सोचा कि सर्वप्रथम उपदेश उनहीं पांचों को दिया जाय। इसी लक्ष्य से बुद्ध बोधगया सारनाथ आये और साधुओं को उपदेश दिया। यह ऐतिहासिक घटना सारनाथ की बुद्ध–प्रतिमा में दर्शाया गया है। बुद्ध ध्यान में मग्न धर्मचक्र परिवर्तन मुद्रा में वज्रासन मारे बैठे हैं। प्रतिमा की चौकी पर केन्द्र में चक्र की आकृति है तथा दोनों तरफ दो मृग आकृतियां खुदी हैं। यह मृगदाव का प्रतीक है तथा प्रथम उपदेश करती हुई प्रतिमा तैयार की गई है। उसी चौकी पर पांच साधुओं की भी आकृतियां है, जो उस घटना को पुष्ट करती हैं कि उरूबेला के निवासी पांच साधुगण को बुद्ध मृगदाव में उपदेश दे रहे हैं।

सारनाथ की प्राचीनता को ध्यान में रखकर अशोक ने वहां स्तूप–निर्माण किया था। ईसापूर्व तीसरी सदी से बारहवीं सदी तक सारनाथ महत्वपूर्ण स्थान रहा। अतएव, स्थान के महत्व के कारण प्राचीन भारत के शासकों ने कुछ न कुछ भवन का

निर्माण कर ऐसे ऐतिहासिक प्रमुखता दी। अशोक द्वारा निर्मित तीन स्तूप निम्नलिखित हैं–

1. चौखंडी
2. धमेक स्तूप
3. धर्मराजिका

सारनाथ जाते समय मार्ग में ही चौखंडी नामक स्तूप का भग्नावशेष दिखता है। टीले पर आठ कोण की ईंट की इमारत है। इसकी विशालता को देखते हुए अनुमान किया जाता है कि यह विशाल स्तूप काखंडहर है। संभवतः धमेक स्तूप की तरह इसका आकार था। यह जमीन से 84 फीट ऊँचा है। इस स्तूप के केन्द्र कनिंधम ने अवशेष ढूंएने के निमित्त खुदाई की थी, किन्तु कुछ उपलब्ध न हो सका। कहा जाता है उस पर अकबर ने गुंबज बनवाया था। परन्तु इसकी बनावट से स्तूप की तिथि का वास्तविक अंदाजा नहीं लगाया जा सकता है। इसी स्थान पर बुद्ध ने पांच साधुओं को उपदेश दिया था। बौद्ध साहित्य में इसका विवरण मिलता है। सर्वप्रथम बुद्ध को देख कर सभी ने उनका निरादर करना निश्चय किया, परन्तु समीप आते ही पांचों ने भगवान का स्वागत ही नहीं किया बल्कि चारों दिशाओं में धर्मप्रचार का संकल्प भी किया।

धमेक स्तूप उससे कुछ दूरी पर स्थित है, जिसे संबंध में विद्वानों में मतभेद है। धमेक शब्द ही धर्म का असांस्कृतिक रूप है। किस मंतव्य से इसे बनाया गया था, यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। संभवतः इसी स्थान से बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि मैत्रेय बुद्ध का जन्म वहीं होगा। यह 104 फीट ऊँचा है। सतह में प्रस्तर लगे हैं। स्तूप का निचला भाग सुन्दर खुदे प्रस्तरों से आच्छादित है तथा ऊपरी भाग ईंट का बना है। इस स्थान से प्राप्त अभिलेख से प्रकट होता है कि चौथी सदी में सर्वास्थिवादिन लोगों के हाथों सारनाथ का प्रमुखता रही।

धर्मराजिका स्तूप के भग्नावशेष अशोक–स्तम्भ के समीप ही दिखता है। धमेक स्तूप से छोटा इसका आधार न होगा। सौ वर्ष पहले यह स्तूप अपने वास्तविक स्थिति में था, किन्तु काशी राज मंत्री जगतसिंह ने अपने स्थान के निर्माण हेतु स्तूप को भग्न

कर सारा ईंट प्रस्तर उठा लिया। इस स्तूप को नष्ट करते समय उन्हें प्रस्तर की बड़ी डिबिया मिला, जिसमें हरे संगमरमर के पात्र में राख रखी थी। संभवतः वह बुद्ध का अवशेष था। उस भस्मपात्र को गंगा नदी में फेंक दिया गया। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सारनाथ के स्तूपों का वर्णन किया है।

कुशीनगर

बौद्ध धर्म के चार तीर्थस्थानों में सारनाथ के बाद कुशीनगर की गिनती होती है। यहीं भगवान् बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। यह स्थान देवरिया जिला में स्थित है, जो कसिया से एक मील की दूरी पर है। प्राचीन नाम कुशीनगर है जिसका उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है। बौद्ध मंदिर के पार्श्व में स्तूप है, जिसे महापरिनिर्वाण स्तूप कहते हैं। आनन्द ने भगवान के आग्रह पर निर्वाण के लिए इसे चुना था। इस स्तूप के निर्माता का नाम अज्ञात है। इसका संस्कार विभिनन समय में होता रहा। पांचवी सदी में भी इसकी मरम्मत हुई थी। उसकी खुदाई से एक लेख प्रकाश में आया है, जिसमें यह उल्लिखित है कि हरिबल स्वामी ने इसे दान दिया था। यह ताम्रपत्र परिनिर्वाण स्तूप के भीतर रखा था। संभवतः हरिबल स्वामी ने इसका संस्कार किया। चीनाी यात्री ह्वेनसांग ने इस स्तूप को देखा था। यह 167 फीट ऊँचा था।

दूसरा स्तूप 'अंगार चैत्य' के नाम से प्रसिद्ध है, जो परिनिर्वाण स्तूप से तीन मील की दूरी पर है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर तथागत का शरीर जलाया गया था। इसकी खुदाई से कोइ वस्तु प्रकाश में नहीं आई है। दीघनिकाय के महापरिनिर्वाण सूत में संबंध में विवरण मिलता है कि बुद्ध ने आनन्द से मल्ल की नगरी कुशीनगर में चलने के लिए आग्रह किया था। यहीं आकर बुद्ध को निर्वाण हुआ। उस सूत में विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है कि भक्त लोगों ने मृत शरीर को कपड़े में लपेट कर चिता पर जलाया।

उस स्थान पर वर्णन किया गया है कि मगध के राजा अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्य, अलकप्प के बुलि, रामग्राम के कोलिय, वेठपीय के ब्राहमिन, पावा के भक्त लोगों ने भी कुशीनारा के मल्ल राजा से शरीरभस्म का अवशेष मांगा। इस प्रकार कुशीनारा में तथागत के निर्वाण के बाद राख के बंटवारे से शांति हुई। सांची के तारेण पर इसी घटना को प्रदर्शित किया गया है।

श्रावस्ती

उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में वर्तमान सहेत–महेत का पुराना नाम श्रावस्ती था, जहां भगवान बुद्ध ने धर्मप्रचार के लिए 24 वर्षावास व्यतीत किया। अनाथपीडिक प्रसिद्ध श्रेष्ठ था, जिसने बुद्ध को निमंत्रण देकर वहां बुलाया। यह घटना बोधगया तथा भरहुत की वेदिकाओं पर खुदी है। वहां भी स्तूपों के भग्नावशेष मिले हैं। कहा जाता है कि अशोक ने स्तूप बनवाया तथा धातुशरीर भी उसमें रखवाया था। अनाथपीडिक आराम के पार्श्व में भग्नावशेष स्थित हैं।

कौशाम्बी

इस नगर का नाम रामायण तथा महाभारत में भी उल्लिखित है। प्राचीन समय में यह बौद्धों का भी प्रधान केन्द्र हो गया था। प्रयाग से 38 मील पर स्थित यह नगर यमुना के किनारे स्थित है। भगवान बुद्ध ने प्रचारार्थ कौशाम्बी में कई वर्षावास व्यतीत किया, जिसका प्रमाण घोषिताराम के भग्नावशेष से मिलता है। कहा जाता है कि बुद्ध ने कोसंबीय सूत का उपदेश यहीं किया था। इस स्थान के महत्व के कारण ही अशोक ने वहां सतम्भ स्थापित कर लेख खुदवाया। पाटलिपुत्र से उज्जैन जाते समय राजमार्ग कौशाम्बी से होकर जाता था। इस स्थान की प्रमुखता के कारण अशोक ने स्तूप का भी निर्माण किया। आज भी संधाराम के दक्षिण पूर्व स्तूप के अवशेष देखे जा सकते हैं। यह 200 फीट ऊँचा स्तूप था, जो बुद्ध के नख एव केश के ऊपर निर्मित हुआ था। इसे पारिभोगिक स्तूप कहेंगे। फाहियान तथा ह्वेनसांग ने इसका वर्णन किया है।

राजगृह

मगध की प्राचीनतम राजधानी का नाम राजगृह था, जिसे पाटलीपुत्र की स्थापना के बाद त्याग दिया गया। भगवान् बुद्ध ने आज्ञाप्राप्ति से पहले ही वहां वर्षावास व्यतीत करते रहे। मगधनरेश बिंबिसार ने गृधकूट पर बुद्ध का आराम बनवाया, जहां भगवान् निवास करते रहे। यद्यपि राजगृह में एक भी स्तूप दृष्टिगत नहीं है किंतु चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इनका वर्णन किया है। उसका कथन है कि राजमहल के उत्तरी द्वार के समीप एक स्तूप था, जहां देवदत्त तथा अजातशत्रु की मित्रता हुई थी। वहीं उन्होंने बुद्ध को मारने के लिए नालगिरी हाथी छोड़ा था, पर उनकी आशा फलवती न हुई। यात्री लिखता है कि इससे उत्तर–पूर्व में एक छोटा स्तूप था, जहां सारिपुत्र ने अश्वजित भिक्षु की बातें सुनी और भिक्षु बन गया। उत्तर दिशा में एक अन्य स्तूप था, जहां श्रीगुप्त बुद्ध को आग से जला देना चाहता था। अंत में उसे ज्ञान हुआ और भगवान् का समादर करने लगा।

नालंदा

मगध की प्राचीनतम राजधानी राजगृह से 5 मील दूर पर नालन्दा नामक बौद्ध स्थान है, जो पटना से पचपन मील की दूरी पर स्थित है। नालंदा बौद्धों का प्रमुख तीर्थों में नहीं गिना जाता, पर बौद्ध साहित्य में इसका नाम बारंबार आता है। सारिपुत्र इसी के समीप पैदा हुआ था। चौथी सदी से नालंदा महाविहार के कारण इसकी ख्याति हो गई, जहां के प्राध्यापकों ने वृहत्तर भारत में जाकर बौद्ध धर्म तथा साहित्य का प्रचार एवं प्रसार किया। बुद्ध भी वहां गए थे। इस कारण अशोक ने वहां स्तूप का निर्माण किया था। उसके भग्नावशेष महाविहार के पश्चिम दिशा में विस्तृत हैं। नालंदा के भव्य भवनों की योजना दर्शनीय है। एक ओर चैत्य की पंक्तियां तथा दूसरी ओर संघाराम, विहार तथा विश्वविद्यालय के भवन स्थित हैं।

नालंदा का प्रधान स्तूप अपनी विशेषता रखता है। इतनी ऊँची इमारत दूसरी नही है। इसके भग्नावशेष के परीक्षण से प्रकट होता है कि मध्य भाग में मूल स्तूप स्थित था। कालांतर में उसमें और आकार जोड़े गये। चारों तरफ पूजा स्तूप दिखलाई पड़ते हैं। देखने से पता लगता है कि एक के नष्ट हाने पर दूसरा स्तूपाकार बना। उसके बाद तीसरा और चौथा बनता रहा। इसकी परीक्षा यह बतलाती है कि मूलस्तूप की वृद्धि न कर उसके अवशेष पर नया स्तूप बनाया गया। इस तरह सात सतहें निश्चित हो जाती हैं यानी मूलसतूप के ऊपर छह बार अन्य आकार बनते रहे। पहले तीन आकार मलवे में छिपे हैं। वे दृष्टिगत नहीं होते। बारह वर्ग फीट के स्थान में सीमित हैं। चौथी बनावट विस्तृत ढंग से की गई थी। उस आवरण को स्थानीय रूप में देखा जा सकता है। पांचवा, छठा तथा सातवां आवरण पृथक–पृथक सीढ़ियों की स्थिति से प्रकट हो जाता है। स्तूप का पांचवा आवरण आकर्षण युक्त है, सुरक्षित है तथा प्रत्येक कोने में गुंबज बने हैं। इसकी दीवाल सीमेंट के द्वारा बनी आकृतियों से सुसज्जित है। सीढी के एक ओर बुद्ध तथा बोधिसत्व की प्रतिमाएं दिख पड़ती है। उस स्थान पर पूजा–स्तूप भी बने हैं, जिनके लेख छठी सदी के अक्षरों में लिखे हैं। सीमेंट द्वारा बनी मूर्तियां भी गुप्तकाल की हैं। इस प्रधान स्तूप की उत्तर दिशा में कई स्तूपों के भग्नावशेष दिखते हैं उनके चबूतरे अलंकृत हैं तथा सीमेंट द्वारा मूर्तियां बनी हैं।